

कर्मभूमि

प्रेमचंद

अध्याय 1

हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन फीस का दाखिला होना अनिवार्य है। या तो फीस दीजिए, या नाम कटवाइए, या जब तक फीस न दाखिल हो, रोज कुछ जुर्माना दीजिए। कहीं-कहीं ऐसा भी नियम है कि उसी दिन फीस दुगुनी कर दी जाती है, और किसी दूसरी तारीख को दुगुनी फीस न दी तो नाम कट जाता है। काशी के क्वीन्स कॉलेज में यही नियम था। सातवीं तारीख को फीस न दो, तो इक्कीसवीं तारीख को दुगुनी फीस देनी पड़ती थी, या नाम कट जाता था। ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके सिवा और क्या हो सकता था, कि गरीबों के लड़के स्कूल छोड़कर भाग जाएं- वही हृदयहीन दफ्तरी शासन, जो अन्य विभागों में है, हमारे शिक्षालयों में भी है। वह किसी के साथ रियायत नहीं करता। चाहे जहां से लाओ, कर्ज लो, गहने गिरवी रखो, लोटा-थाली बेचो, चोरी करो, मगर फीस जरूर दो, नहीं दूनी फीस देनी पड़ेगी, या नाम कट जाएगा। जमीन और जायदाद के कर वसूल करने में भी कुछ रियायत की जाती है। हमारे शिक्षालयों में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहां स्थायी रूप से

मार्शल-लॉ का व्यवहार होता है। कचहरी में पैसे का राज है, हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय। देर में आइए तो जुर्माना न आइए तो जुर्माना सबक न याद हो तो जुर्माना किताबें न खरीद सकिए तो जुर्माना कोई अपराध हो जाए तो जुर्माना शिक्षालय क्या है, जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है—

आज वही वसूली की तारीख है। अध्यापकों की मेजों पर रुपयों के ढेर लगे हैं। चारों तरफ खनाखन की आवाजें आ रही हैं। सराफे में भी रुपये की ऐसी झंकार कम सुनाई देती है। हरेक मास्टर तहसील का चपरासी बना बैठा हुआ है। जिस लड़के का नाम पुकारा जाता है, वह अध्यापक के सामने आता है, फीस देता है और अपनी जगह पर आ बैठता है। मार्च का महीना है। इसी महीने में अप्रैल, मई और जून की फीस भी वसूल की जा रही है। इम्तहान की फीस भी ली जा रही है। दसवें दर्जे में तो एक-एक लड़के को चालीस रुपये देने पड़ रहे हैं।

अध्यापक ने बीसवें लड़के का नाम पुकारा-अमरकान्त

अमरकान्त गैरहाजिर था।

अध्यापक ने पूछा-क्या अमरकान्त नहीं आया?

एक लड़के ने कहा-आए तो थे, शायद बाहर चले गए हों।

'क्या फीस नहीं लाया है?'

किसी लड़के ने जवाब नहीं दिया।

अध्यापक की मुद्रा पर खेद की रेखा झलक पड़ी। अमरकान्त अच्छे लड़कों में था। बोले-शायद फीस लाने गया होगा। इस घंटे में न आया, तो दूनी फीस देनी पड़ेगी। मेरा क्या अख्तियार है- दूसरा लड़का चले-गोवर्धनदास सहसा एक लड़के ने पूछा-अगर आपकी इजाजत हो, तो मैं बाहर जाकर देखूं?

अध्यापक ने मुस्कराकर कहा-घर की याद आई होगी। खैर, जाओ मगर दस मिनट के अंदर आ जाना। लड़कों को बुला-बुलाकर फीस लेना मेरा काम नहीं है।

लड़के ने नम्रता से कहा-अभी आता हूं। कसम ले लीजिए, जो हाते के बाहर जाऊं।

यह इस कक्षा के संपन्न लड़कों में था, बड़ा खिलाड़ी, बड़ा बैठकबाज। हाजिरी देकर गायब हो जाता, तो शाम की खबर लाता। हर महीने फीस की दूनी रकम जुर्माना दिया करता था। गोरे रंग का, लंबा, छरहरा शौकीन युवक था। जिसके प्राण खेल में बसते थे। नाम था मोहम्मद सलीम।

सलीम और अमरकान्त दोनों पास-पास बैठते थे। सलीम को हिसाब लगाने या तर्जुमा करने में अमरकान्त से विशेष सहायता मिलती थी। उसकी कापी से नकल कर लिया करता था। इससे दोनों में दोस्ती हो गई थी। सलीम कवि था। अमरकान्त उसकी गजलें बड़े चाव से सुनता था। मैत्री का यह एक और कारण था।

सलीम ने बाहर जाकर इधर-उधर निगाह दौड़ाई, अमरकान्त का कहीं पता न था। जरा और आगे बढ़े, तो देखा, वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ा है। पुकारा-अमरकान्त ओ बुध्दू लाल चलो, फीस जमा कर। पंडितजी बिगड़ रहे हैं।

अमरकान्त ने अचकन के दामन से आंखें पोंछ लीं और सलीम की तरफ आता हुआ बोला-क्या मेरा नंबर आ गया?

सलीम ने उसके मुंह की तरफ देखा, तो उसकी आंखें लाल थीं। वह अपने जीवन में शायद ही कभी रोया हो चौंककर बोला-अरे तुम रो रहे हो क्या बात है-

अमरकान्त सांवले रंग का, छोटा-सा दुबला-पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गई थी पर अभी मर्से भी न भीगी थीं। चौदह-पंद्रह साल का किशोर-सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, अंकित हो रही थी, मानो संसार में उसका कोई नहीं है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी प्रतिभा, कुछ ऐसी मनस्विता थी कि एक बार उसे देखकर फिर भूल जाना कठिन था।

उसने मुस्कराकर कहा-कुछ नहीं जी, रोता कौन है-

'आप रोते हैं, और कौन रोता है। सच बताओ क्या हुआ?'

अमरकान्त की आंखें फिर भर आईं। लाख यत्न करने पर भी आंसू न रुक सके। सलीम समझ गया। उसका हाथ पकड़कर बोला-क्या फीस के लिए रो रहे हो- भले आदमी, मुझसे क्यों न कह दिया- तुम मुझे भी गैर समझते हो। कसम खुदा की, बड़े नालायक आदमी हो तुम। ऐसे आदमी को गोली मार देनी चाहिए दोस्तों से भी यह गैरियत चलो क्लास में, मैं फीस दिए देता हूं। जरा-सी बात के लिए घंटे-भर से रो रहे हो। वह तो कहो मैं आ गया, नहीं तो आज जनाब का नाम ही कट गया होता।

अमरकान्त को तसल्ली तो हुई पर अनुग्रह के बोझ से उसकी गर्दन दब गई। बोला -पंडितजी आज मान न जाएंगे?

सलीम ने खड़े होकर कहा-पंडितजी के बस की बात थोड़े ही है। यही सरकारी कायदा है। मगर हो तुम बड़े शैतान, वह तो खैरियत हो गई, मैं रुपये लेता आया था, नहीं खूब इम्तहान देते। देखो, आज एक ताजा गजल कही है। पीठ सहला देना :

आपको मेरी वफा याद आई,

खैर है आज यह क्या याद आई।

अमरकान्त का व्यथित चित्ता इस समय गजल सुनने को तैयार न था पर सुने बगैर काम भी तो नहीं चल सकता। बोला-नाजुक चीज है। खूब कहा है। मैं तुम्हारी जबान की सफाई पर जान देता हूं।

सलीम-यही तो खास बात है, भाई साहब लफ्जों की झंकार का नाम गजल नहीं है। दूसरा शेर सुनो :

फिर मेरे सीने में एक हूक उठी,

फिर मुझे तेरी अदा याद आई।

अमरकान्त ने फिर तारीफ की-लाजवाब चीज है। कैसे तुम्हें ऐसे शेर सूझ जाते हैं-

सलीम हंसा-उसी तरह, जैसे तुम्हें हिसाब और मजमून सूझ जाते हैं। जैसे एसोसिएशन में स्पीचें दे लेते हो। आओ, पान खाते चलें।

दोनों दोस्तों ने पान खाए और स्कूल की तरफ चले। अमरकान्त ने कहा-पंडितजी बड़ी डांट बताएंगे।

'फीस ही तो लेंगे'

'और जो पूछें, अब तक कहां थे?'

'कह देना, फीस लाना भूल गया था।'

'मुझसे न कहते बनेगा। मैं साफ-साफ कह दूंगा।'

तो तुम पिटोगे भी मेरे हाथ से'

संध्या समय जब छुट्टी हुई और दोनों मित्र घर चले, अमरकान्त ने कहा-तुमने आज मुझ पर जो एहसान किया है...

सलीम ने उसके मुंह पर हाथ रखकर कहा-बस खबरदार, जो मुंह से एक आवाज भी निकाली। कभी भूलकर भी इसका जिक्र न करना।

'आज जलसे में आओगे?'

'मजमून क्या है, मुझे तो याद नहीं?'

'अजी वही पश्चिमी सभ्यता है।'

'तो मुझे दो-चार प्वाइंट बता दो, नहीं तो मैं वहां कहूंगा क्या?'

'बताना क्या है- पश्चिमी सभ्यता की बुराइयां हम सब जानते ही हैं। वही बयान कर देना।'

'तुम जानते होगे, मुझे तो एक भी नहीं मालूम।'

'एक तो यह तालीम ही है। जहां देखो वहीं दूकानदारी। अदालत की दूकान, इल्म की दूकान, सेहत की दूकान। इस एक प्वाइंट पर बहुत कुछ कहा जा सकता है।'

'अच्छी बात है, आऊंगा।'

दो

अमरकान्त के पिता लाला समरकान्त बड़े उद्योगी पुरुष थे। उनके पिता केवल एक झोंपड़ी छोड़कर मरे थे मगर समरकान्त ने अपने बाहुबल से लाखों की संपत्ति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी-सी हल्दी की आढ़त थी। हल्दी से गुड़ और चावल की बारी आई। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया। अब आढ़तें बंद कर दी थीं। केवल लेन-देन करते थे। जिसे कोई महाजन रुपये न दे, उसे वह बेखटके दे देते और वसूल भी कर लेते उन्हें आश्चर्य होता था कि किसी के रुपये मारे कैसे जाते हैं- ऐसा मेहनती आदमी भी कम होगा। घड़ी रात रहे गंगा-स्नान करने चले जाते और सूर्योदय के पहले विश्वनाथजी के दर्शन करके दूकान पर पहुंच जाते। वहां मुनीम को जरूरी काम समझाकर तगादे पर निकल जाते और तीसरे पहर लौटते। भोजन करके फिर दूकान आ जाते और आधी रात तक डटे रहते। थे भी भीमकाय। भोजन तो एक ही बार करते थे, पर खूब डटकर। दो-ढाई सौ मुगदर के हाथ अभी तक फेरते थे।

अमरकान्त की माता का उसके बचपन ही में देहांत हो गया था। समरकान्त ने मित्रों के कहने-सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था। उस सात साल के बालक ने नई मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नई माता उसकी जिद और शरारतों को उस क्षमा-दृष्टि से नहीं देखती, जैसे उसकी मां देखती थीं। वह अपनी मां का अकेला लाड़ला लड़का था, बड़ा जिद्दी, बड़ा नटखट। जो बात मुंह से निकल जाती, उसे पूरा करके ही छोड़ता। नई माताजी बात-बात पर डांटती थीं। यहां तक कि उसे माता से द्वेष हो गया। जिस बात को वह मना करतीं, उसे वह अदबदाकर करता। पिता से भी ढीठ हो गया। पिता और पुत्र में स्नेह का बंधन न रहा। लालाजी जो काम करते, बेटे को उससे अरुचि होती। वह मलाई के प्रेमी थे बेटे को मलाई से अरुचि थी। वह पूजा-पाठ बहुत करते थे, लड़का इसे ढोंग समझता था। वह पहले सिरे के लोभी थे लड़का पैसे को ठीकरा समझता था।

मगर कभी-कभी बुराई से भलाई पैदा हो जाती है। पुत्र सामान्य रीति से पिता का अनुगामी होता है। महाजन का बेटा महाजन, पंडित का पंडित, वकील का वकील, किसान का किसान होता है मगर यहां इस द्वेष ने महाजन के पुत्र को महाजन का शत्रु बना दिया। जिस बात का पिता ने विरोध किया, वह पुत्र के लिए मान्य हो गई, और जिसको सराहा, वह त्याज्य। महाजनी के हथकंडे और षडयंत्र उसके सामने रोज ही रचे जाते थे। उसे इस व्यापार से घृणा होती थी। इसे चाहे पूर्व संस्कार कह लो पर हम तो यही कहेंगे कि अमरकान्त के चरित्र का निर्माण पिता-द्वेष के हाथों हुआ।

खैरियत यह हुई कि उसके कोई सौतेला भाई न हुआ। नहीं शायद वह घर से निकल गया होता। समरकान्त अपनी संपत्ति को पुत्र से ज्यादा मूल्यवान समझते थे। पुत्र के लिए तो संपत्ति की कोई जरूरत न थी पर संपत्ति के लिए पुत्र की जरूरत थी। विमाता की तो इच्छा यही थी कि उसे वनवास देकर अपनी चहेती नैना के लिए रास्ता साफ कर दे पर समरकान्त इस विषय में निश्चल रहे। मजा यह था कि नैना स्वयं भाई से प्रेम करती थी, और अमरकान्त के हृदय में अगर घर वालों के लिए कहीं कोमल स्थान था, तो वह नैना के लिए था। नैना की सूरत भाई से इतनी मिलती-जुलती थी, जैसे सगी बहन हो। इस अनुरूपता ने उसे अमरकान्त के और भी समीप कर दिया था। माता-पिता के इस दुर्वर्ण्यहवार को वह इस स्नेह के नशे में भुला दिया करता था। घर में कोई बालक न था और नैना के लिए किसी साथी का होना अनिवार्य था। माता चाहती थीं, नैना भाई से दूर-दूर रहे। वह अमरकान्त को इस योग्य न समझती थीं कि वह उनकी बेटि के साथ खेले। नैना की बाल-प्रकृति इस कूटनीति के झुकाए न झुकी। भाई-बहन में यह स्नेह यहां तक बढ़ा कि अंत में विमातृत्व ने मातृत्व को भी परास्त कर दिया। विमाता ने नैना को भी आंखों से गिरा दिया और पुत्र की कामना लिए संसार से विदा हो गई।

अब नैना घर में अकेली रह गई। समरकान्त बाल-विवाह की बुराइयां समझते थे। अपना विवाह भी न कर सके। वृद्ध-विवाह की बुराइयां भी समझते थे। अमरकान्त का विवाह करना जरूरी हो गया। अब इस प्रस्ताव का विरोध कौन करता-

अमरकान्त की अवस्था उन्नीस साल से कम न थी पर देह और बुद्धि को देखते हुए, अभी किशोरावस्था ही में था। देह का दुर्बल, बुद्धि का मंद। पौधे को कभी मुक्त प्रकाश न मिला, कैसे बढ़ता, कैसे फैलता- बढ़ने और फैलने के दिन कुसंगति और असंयम में निकल गए। दस साल पढ़ते हो गए थे और अभी ज्यों-त्यों आठवें में पहुंचा था। किंतु विवाह के लिए यह बातें नहीं देखी जातीं। देखा जाता है धान, विशेषकर उस बिरादरी में, जिसका उम्र ही व्यवसाय हो। लखनऊ के एक धानी परिवार से बातचीत चल पड़ी। समरकान्त की तो लार टपक पड़ी। कन्या के घर में विधावा माता के सिवा निकट का कोई संबंधी न था, और धान की कहीं थाह नहीं। ऐसी कन्या बड़े भागों से मिलती है। उसकी माता ने बेटे की

साधा बेटी से पूरी की थी। त्याग की जगह भोग, शील की जगह तेज, कोमल की जगह तीव्र का संस्कार किया था। सिकुड़ने और सिमटने का उसे अभ्यास न था। और वह युवक-प्रकृति की युवती ब्याही गई युवती-प्रकृति के युवक से, जिसमें पुरुषार्थ का कोई गुण नहीं। अगर दोनों के कपड़े बदल दिए जाते, तो एक-दूसरे के स्थानापन्न हो जाते। दबा हुआ पुरुषार्थ ही स्त्रीत्व है।

विवाह हुए दो साल हो चुके थे पर दोनों में कोई सामंजस्य न था। दोनों अपने-अपने मार्ग पर चले जाते थे। दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग। जैसे दो भिन्न जलवायु के जंतु एक पिंजरे में बंद कर दिए गए हों। हां, तभी अमरकान्त के जीवन में संयम और प्रयास की लगन पैदा हो गई थी। उसकी प्रकृति में जो ढीलापन, निर्जीवता और संकोच था वह कोमलता के रूप में बदलता जाता था। विद्याभ्यास में उसे अब रुचि हो गई थी। हालांकि लालाजी अब उसे घर के धंधों में लगाना चाहते थे-वह तार-वार पढ़ लेता था और इससे अधिक योग्यता की उनकी समझ में जरूरत न थी-पर अमरकान्त उस पथिक की भांति, जिसने दिन विश्राम में काट दिया हो, अब अपने स्थान पर पहुंचने के लिए दूने वेग से कदम बढ़ाए चला जाता था।

तीन

स्कूल से लौटकर अमरकान्त नियमानुसार अपनी छोटी कोठरी में जाकर चरखे पर बैठ गया। उस विशाल भवन में, जहां बारात ठहर सकती थी, उसने अपने लिए यही छोटी-सी कोठरी पसंद की थी। इधर कई महीने से उसने दो घंटे रोज सूत कातने की प्रतिज्ञा कर ली थी और पिता के विरोध करने पर भी उसे निभाए जाता था।

मकान था तो बहुत बड़ा मगर निवासियों की रक्षा के लिए उतना उपयुक्त न था, जितना धान की रक्षा के लिए। नीचे के तल्ले में कई बड़े-बड़े कमरे थे, जो गोदाम के लिए बहुत अनुकूल थे। हवा और प्रकाश का कहीं रास्ता नहीं। जिस रास्ते से हवा और प्रकाश आ सकता है, उसी रास्ते से चोर भी तो आ सकता है। चोर की शंका उसकी एक-एक ईंट से टपकती थी। ऊपर के दोनों तल्ले हवादार और खुले हुए थे। भोजन नीचे बनता था। सोना-बैठना ऊपर होता था। सामने सड़क पर दो कमरे थे। एक में लालाजी बैठते थे, दूसरे में मुनीम। कमरों के आगे एक सायबान था, जिसमें गाय बंधाती थी। लालाजी पक्के गोभक्त थे।

अमरकान्त सूत कातने में मग्न था कि उसकी छोटी बहन नैना आकर बोली-क्या हुआ भैया, फीस जमा हुई या नहीं- मेरे पास बीस रुपये हैं, यह ले लो। मैं कल और किसी से मांग लाऊंगी।

अमर ने चरखा चलाते हुए कहा-आज ही तो फीस जमा करने की तारीख थी। नाम कट गया। अब रुपये लेकर क्या करूंगा-

नैना रूप-रंग में अपने भाई से इतनी मिलती थी कि अमरकान्त उसकी साड़ी पहन लेता, तो यह बतलाना मुश्किल हो जाता कि कौन यह है कौन वह हां, इतना अंतर अवश्य था कि भाई की दुर्बलता यहां सुकुमारता बनकर आकर्षक हो गई थी।

अमर ने दिल्ली की थी पर नैना के चेहरे रंग उड़ गया। बोली-तुमने कहा नहीं, नाम न काटो, मैं दो-एक दिन में दे दूंगा-

अमर ने उसकी घबराहट का आनंद उठाते हुए कहा-कहने को तो मैंने सब कुछ कहा लेकिन सुनता कौन था-

नैना ने रोष के भाव से कहा-मैं तो तुम्हें अपने कड़े दे रही थी, क्यों नहीं लिए-

अमर ने हंसकर पूछा-और जो दादा पूछते, तो क्या होता-

'दादा से बतलाती ही क्यों?'

अमर ने मुंह लंबा करके कहा-मैं चोरी से कोई काम नहीं करना चाहता, नैना अब खुश हो जाओ, मैंने फीस जमा कर दी।

नैना को विश्वास न आया, बोली-फीस नहीं, वह जमा कर दी। तुम्हारे पास रुपये कहाँ थे?'

'नहीं नैना, सच कहता हूँ, जमा कर दी।'

'रुपये कहाँ थे?'

'एक दोस्त से ले लिए।'

'तुमने मांगे कैसे?'

'उसने आप-ही-आप दे दिए, मुझे मांगने न पड़े।'

'कोई बड़ा सज्जन होगा।'

'हां, है तो सज्जन, नैना जब फीस जमा होने लगी तो मैं मारे शर्म के बाहर चला गया। न जाने क्यों उस वक्त मुझे रोना आ गया। सोचता था, मैं ऐसा गया-बीता हूँ कि मेरे पास चालीस रुपये नहीं। वह मित्र जरा देर में मुझे बुलाने आया। मेरी आंखें लाल थीं। समझ गया। तुरंत जाकर फीस जमा कर दी। तुमने कहाँ पाए ये बीस रुपये?'

'यह न बताऊंगी।'

नैना ने भाग जाना चाहा। बारह बरस की यह लज्जाशील बालिका एक साथ ही सरल भी थी और चतुर भी। उसे ठफना सहज न था। उससे अपनी चिंताओं को छिपाना कठिन था।

अमर ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला-जब तक बताओगी नहीं, मैं जाने न दूंगा। किसी से कहूंगा नहीं, सच कहता हूँ।

नैना झंपती हुई बोली-दादा से लिए।

अमरकान्त ने बेदिली के साथ कहा-तुमने उनसे नाहक मांगे, नैना जब उन्होंने मुझे इतनी निर्दयता से दुत्कार दिया, तो मैं नहीं चाहता कि उनसे एक पैसा भी मांगूँ। मैंने तो समझा था, तुम्हारे पास कहीं पड़े होंगे अगर मैं जानता कि तुम भी दादा से ही मांगोगी तो साफ कह देता, मुझे रुपये की जरूरत नहीं। दादा क्या बोले-

नैना सजल नेत्र होकर बोली-बोले तो नहीं। यही कहते रहे कि करना-धारना तो कुछ नहीं, रोज रुपये चाहिए, कभी फीस कभी किताब कभी चंदा। फिर मुनीमजी से कहा, बीस रुपये दे दो। बीस रुपये फिर देना।

अमर ने उत्तोजित होकर कहा-तुम रुपये लौटा देना, मुझे नहीं चाहिए।

नैना सिसक-सिसककर रोने लगी। अमरकान्त ने रुपये जमीन पर फेंक दिए थे और वह सारी कोठरी में बिखरे पड़े थे। दोनों में से एक भी चुनने का नाम न लेता था। सहसा लाला अमरकान्त आकर द्वार पर खड़े हो गए। नैना की सिसकियां बंद हो गईं और अमरकान्त मानो तलवार की चोट खाने के लिए अपने मन को तैयार करने लगा। लाला जो दोहरे बदन के दीर्घकाय मनुष्य थे। सिर से पांच तक सेठ-वही खल्वाट मस्तक, वही फूले हुए कपोल, वही निकली हुई

तोंद। मुख पर संयम का तेज था, जिसमें स्वार्थ की गहरी झलक मिली हुई थी। कठोर स्वर में बोले-चरखा चला रहा है। इतनी देर में कितना सूत काता- होगा दो-चार रुपये का-

अमरकान्त ने गर्व से कहा-चरखा रुपये के लिए नहीं चलाया जाता।

'और किसलिए चलाया जाता है।'

'यह आत्म-शुद्धि का एक साधन है।'

समरकान्त के घाव पर जैसे नमक पड़ गया। बोले-यह आज नई बात मालूम हुई। तब तो तुम्हारे ऋषि होने में कोई संदेह नहीं रहा, मगर साधन के साथ कुछ घर-गृहस्थी का काम भी देखना होता है। दिन-भर स्कूल में रहो, वहां से लौटो तो चरखे पर बैठो, रात को तुम्हारी स्त्री-पाठशाला खुले, संध्या समय जलसे हों, तो घर का धंधा कौन करे- मैं बैल नहीं हूं। तुम्हीं लोगों के लिए इस जंजाल में फंसा हुआ हूं। अपने ऊपर लाद न ले जाऊंगा। तुम्हें कुछ तो मेरी मदद करनी चाहिए। बड़े नीतिवान बनते हो, क्या यह नीति है कि बूढ़ा बाप मरा करे और जवान बेटा उसकी बात भी न पूछे-

अमरकान्त ने उदड़ता से कहा-मैं तो आपसे बार-बार कह चुका, आप मेरे लिए कुछ न करें। मुझे धान की जरूरत नहीं। आपकी भी वृद्धावस्था है। शांतचित्त होकर भगवत्-भजन कीजिए।

समरकान्त तीखे शब्दों में बोले-धान न रहेगा लाला, तो भीख मांगोगे। यों चैन से बैठकर चरखा न चलाओगे। यह तो न होगा, मेरी कुछ मदद करो, पुरुषार्थहीन मनुष्यों की तरह कहने लगे, मुझे धान की जरूरत नहीं। कौन है, जिसे धान की जरूरत नहीं- साधु-संन्यासी तक तो पैसों पर प्राण देते हैं। धान बड़े पुरुषार्थ से मिलता है। जिसमें पुरुषार्थ नहीं, वह क्या धान कमाएगा- बड़े-बड़े तो धान की उपेक्षा कर ही नहीं सकते, तुम किस खेत की मूली हो

अमर ने उसी वितंडा भाव से कहा-संसार धान के लिए प्राण दे, मुझे धन की इच्छा नहीं। एक मजूर भी धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुए जीवन का निर्वाह कर सकता है। कम-से-कम मैं अपने जीवन में इसकी परीक्षा करना चाहता हूं।

लालाजी को वाद-विवाद का अवकाश न था। हारकर बोले-अच्छा बाबा, कर लो खूब जी भरकर परीक्षा लेकिन रोज-रोज रुपये के लिए मेरा सिर न खाया करो। मैं अपनी गाढ़ी कमाई तुम्हारे व्यसन के लिए नहीं लुटाना चाहता।

लालाजी चले गए। नैना कहीं एकांत में जाकर खूब रोना चाहती थी पर हिल न सकती थी और अमरकान्त ऐसा विरक्त हो रहा था, मानो जीवन उसे भार हो रहा है।

उसी वक्त महरी ने ऊपर से आकर कहा-भैया, तुम्हें बहूजी बुला रही हैं।

अमरकान्त ने बिगड़कर कहा-जा कह दे, फुर्सत नहीं है। चली वहां से-बहूजी बुला रही हैं।

लेकिन जब महरी लौटने लगी, तो उसने अपने तीखेपन पर लज्जित होकर कहा-मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा है सिल्लो कह दो, अभी आता हूं। तुम्हारी रानीजी क्या कर रही हैं-

सिल्लो का पूरा नाम था कौशल्या। सीतला में पति, पुत्र और एक आंख जाती रही थी, तब से विक्षिप्त-सी हो गई थी। रोने की बात पर हंसती, हंसने की बात पर रोती। घर के और सभी प्राणी, यहां तक की नौकर-चाकर तक उसे डांटते रहते थे। केवल अमरकान्त उसे मनुष्य समझता था। कुछ स्वस्थ होकर बोली-बैठी कुछ लिख रही हैं। लालाजी चीखते

थे इसी से तुम्हें बुला भेजा।

अमर जैसे गिर पड़ने के बाद गर्द झाड़ता हुआ, प्रसन्न मुख ऊपर चला। सुखदा अपने कमरे के द्वार पर खड़ी थी। बोली-तुम्हारे तो दर्शन ही दुर्लभ हो जाते हैं। स्कूल से आकर चरखा ले बैठते हो। क्यों नहीं मुझे घर भेज देते- जब मेरी जरूरत समझना, बुला भेजना। अबकी आए मुझे छः महीने हुए। मीयाद पूरी हो गई। अब तो रिहाई हो जानी चाहिए।

यह कहते हुए उसने एक तश्तरी में कुछ नमकीन और कुछ मिठाई लाकर मेज पर रख दी और अमर का हाथ पकड़ कमरे में ले जाकर कुरसी पर बैठा दिया।

यह कमरा और सब कमरों से बड़ा, हवादार और सुसज्जित था। दरी का गर्श था, उस पर करीने से कई गद्ददार और सादी कुरसियां लगी हुई थीं। बीच में एक छोटी-सी नक्काशीदार गोल मेज थी। शीशे की आल्मारियों में सजिल्द पुस्तकें सजी हुई थीं। आलों पर तरह-तरह के खिलौने रखे हुए थे। एक कोने में मेज पर हारमोनियम रखा हुआ था। दीवारों पर धुरंधर, रवि वर्मा और कई चित्रकारों की तस्वीरें शोभा दे रही थीं। दो-तीन पुराने चित्र भी थे। कमरे की सजावट से सुरुचि और संपन्नता का आभास होता था।

अमरकान्त का सुखदा से विवाह हुए दो साल हो चुके थे। सुखदा दो बार तो एक-एक महीना रहकर चली गई थी। अबकी उसे आए छः महीने हो गए थे मगर उनका स्नेह अभी तक ऊपर-ही-ऊपर था। गहराइयों में दोनों एक-दूसरे से अलग-अलग थे। सुखदा ने कभी अभाव न जाना था, जीवन की कठिनाइयां न सही थीं। वह जाने-माने मार्ग को छोड़कर अनजान रास्ते पर पांव रखते डरती थी। भोग और विलास को वह जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु समझती थी और उसे हृदय से लगाए रहना चाहती थी। अमरकान्त को वह घर के कामकाज की ओर खींचने का प्रयास करती रहती थी। कभी समझाती थी, कभी रूठती थी, कभी बिगड़ती थी। सास के न रहने से वह एक प्रकार से घर की स्वामिनी हो गई थी। बाहर के स्वामी लाला समरकान्त थे पर भीतर का संचालन सुखदा ही के हाथों में था। किंतु अमरकान्त उसकी बातों को हंसी में टाल देता। उस पर अपना प्रभाव डालने की कभी चेष्टा न करता। उसकी विलासप्रियता मानो खेतों में हौवे की भांति उसे डराती रहती थी। खेत में हरियाली थी, दाने थे, लेकिन वह हौवा निश्चल भाव से दोनों हाथ फैलाए खड़ा उसकी ओर घूरता रहता था। अपनी आशा और दुराशा, हार और जीत को वह सुखदा से बुराई की भांति छिपाता था। कभी-कभी उसे घर लौटने में देर हो जाती, तो सुखदा व्यंग्य करने से बाज न आती थी-हां, यहां कौन अपना बैठा हुआ है बाहर के मजे घर में कहां और यह तिरस्कार, किसान की कड़े-कड़े की भांति हौवे के भय को और भी उत्तोजित कर देती थी। वह उसकी खुशामद करता, अपने सिद्धांतों को लंबी-से-लंबी रस्सी देता पर सुखदा इसे उसकी दुर्बलता समझकर तुकरा देती थी। वह पति को दया-भाव से देखती थी, उसकी त्यागमयी प्रवृत्ति का अनादर न करती थी पर इसका तथ्य न समझ सकती थी। वह अगर सहानुभूति की भिक्षा मांगता, उसके सहयोग के लिए हाथ फैलाता, तो शायद वह उसकी उपेक्षा न करती। अपनी मुठ्ठी बंद करके, अपनी मिठाई आप खाकर, वह उसे रूला देता। वह भी अपनी मुठ्ठी बंद कर लेती थी और अपनी मिठाई आप खाती थी। दोनों आपस में हंसते-बोलते थे, साहित्य और इतिहास की चर्चा करते थे लेकिन जीवन के गूढ़ व्यापारों में पृथक् थे। दूध और पानी का मेल नहीं, रेत और पानी का मेल था जो एक क्षण के लिए मिलकर पृथक् हो जाता था।

अमर ने इस शिकायत की कोमलता या तो समझी नहीं, या समझकर उसका रस न ले सका। लालाजी ने जो आघात किया था, अभी उसकी आत्मा उस वेदना से तड़प रही थी। बोला-मैं भी यही उचित समझता हूं। अब मुझे पढ़ना छोड़कर जीविका की फिक्र करनी पड़ेगी।

सुखदा ने खीझकर कहा-हां, ज्यादा पढ़ लेने से सुनती हूं, आदमी पागल हो जाता है।

अमर ने लड़ने के लिए यहां भी आस्तीनें चढ़ा लीं-तुम यह आक्षेप व्यर्थ कर रही हो। पढ़ने से मैं जी नहीं चुराता लेकिन इस दशा में पढ़ना नहीं हो सकता। आज स्कूल में मुझे जितना लज्जित होना पड़ा, वह मैं ही जानता हूं। अपनी आत्मा की हत्या करके पढ़ने से भूखा रहना कहीं अच्छा है।

सुखदा ने भी अपने शस्त्र संभाले। बोली-मैं तो समझती हूं कि घड़ी-दो घड़ी दूकान पर बैठकर भी आदमी बहुत कुछ पढ़ सकता है। चरखे और जलसों में जो समय देते हो, वह दूकान पर दो, तो कोई बुराई न होगी। फिर जब तुम किसी से कुछ कहोगे नहीं तो कोई तुम्हारे दिल की बातें कैसे समझ लेगा- मेरे पास इस वक्त भी एक हजार रुपये से कम नहीं। वह मेरे रुपये हैं, मैं उन्हें उड़ा सकती हूं। तुमने मुझसे चर्चा तक न की। मैं बुरी सही, तुम्हारी दुश्मन नहीं। आज लालाजी की बातें सुनकर मेरा रक्त खौल रहा था। चालीस रुपये के लिए इतना हंगामा तुम्हें जितनी जरूरत हो, मुझसे लो, मुझसे लेते तुम्हारे आत्म-सम्मान को चोट लगती हो, अम्मां से लो। वह अपने को धान्य समझेंगी। उन्हें इसका अरमान ही रह गया कि तुम उनसे कुछ मांगते। मैं तो कहती हूं, मुझे लेकर लखनऊ चले चलो और निश्चित होकर पढ़ो। अम्मां तुम्हें इंग्लैंड भेज देंगी। वहां से अच्छी डिग्री ला सकते हो।

सुखदा ने निष्कपट भाव से यह प्रस्ताव किया था। शायद पहली बार उसने पति से अपने दिल की बात कही अमरकान्त को बुरा लगा। बोला-मुझे डिग्री इतनी प्यारी नहीं है कि उसके लिए ससुराल की रोटियां तोड़ूं अगर मैं अपने परिश्रम से धानोपार्जन करके पढ़ सकूंगा, तो पढ़ूंगा नहीं कोई धंधा देखूंगा। मैं अब तक व्यर्थ ही शिक्षा के मोह में पड़ा हुआ था। कॉलेज के बाहर भी अध्ययनशील आदमी बहुत-कुछ सीख सकता है। मैं अभिमान नहीं करता लेकिन साहित्य और इतिहास की जितनी पुस्तकें इन दो-तीन सालों में मैंने पढ़ी हैं, शायद ही मेरे कॉलेज में किसी ने पढ़ी हों

सुखदा ने इस अप्रिय विषय का अंत करने के लिए कहा-अच्छा, नाश्ता तो कर लो। आज तो तुम्हारी मीटिंग है। नौ बजे के पहले क्यों लौटने लगे- मैं तो टाकीज में जाऊंगी। अगर तुम ले चलो, तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं।

अमर ने रुखेपन से कहा-मुझे टाकीज जाने की फुरसत नहीं है। तुम जा सकती हो।

'फिल्मों से भी बहुत-कुछ लाभ उठाया जा सकता है।'

'तो मैं तुम्हें मना तो नहीं करता।'

'तुम क्यों नहीं चलते?'

'जो आदमी कुछ उपार्जन न करता हो, उसे सिनेमा देखने का अधिकार नहीं। मैं उसी संपत्ति को अपना समझता हूं, जिसे मैंने परिश्रम से कमाया है।'

कई मिनट तक दोनों गुम बैठे रहे। जब अमर जलपान करके उठा, तो सुखदा ने सप्रेम आग्रह से कहा-कल से संध्या समय दूकान पर बैठा करो। कठिनाइयों पर विजय पाना पुरुषार्थी मनुष्यों का काम है अवश्य मगर कठिनाइयों की सृष्टि करना, अनायास पांव में कांटे चुभाना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

अमरकान्त इस आदेश का आशय समझ गया पर कुछ बोला नहीं। विलासिनी संकटों से कितना डरती है यह चाहती है, मैं भी गरीबों का खून चूसूं उनका गला काटूं यह मुझसे न होगा।

सुखदा उसके दृष्टिकोण का समर्थन करके कदाचित् उसे जीत सकती थी। उधर से हटाने की चेष्टा करके वह

उसके संकल्प को और भी दृढ़ कर रही थी। अमरकान्त उससे सहानुभूति करके अपने अनुकूल बना सकता था पर शुष्क त्याग का रूप दिखाकर उसे भयभीत कर रहा था।

चार

अमरकान्त मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में प्रांत में सर्वप्रथम आया पर अवस्था अधिक होने के कारण छात्रवृत्ति न पा सका। इससे उसे निराशा की जगह एक तरह का संतोष हुआ क्योंकि वह अपने मनोविकारों को कोई टिकौना न देना चाहता था। उसने कई बड़ी-बड़ी कोठियों में पत्र-व्यवहार करने का काम उठा लिया। धानी पिता का पुत्र था, यह काम उसे आसानी से मिल गया। लाला समरकान्त की व्यवसाय-नीति से प्रायः उनकी बिरादरी वाले जलते थे और पिता-पुत्र के इस वैमनस्य का तमाशा देखना चाहते थे। लालाजी पहले तो बहुत बिगड़े। उनका पुत्र उन्हीं के सहवर्गियों की सेवा करे, यह उन्हें अपमानजनक जान पड़ा पर अमर ने उन्हें सुझाया कि वह यह काम केवल व्यावसायिक ज्ञानोपार्जन के भाव से कर रहा है। लालाजी ने भी समझा, कुछ-न-कुछ सीख ही जाएगा। विरोध करना छोड़ दिया। सुखदा इतनी आसानी से मानने वाली न थी। एक दिन दोनों में इसी बात पर झड़प हो गई।

सुखदा ने कहा-तुम दस-दस, पांच-पांच रुपये के लिए दूसरों की खुशामद करते फिरते हो तुम्हें शर्म भी नहीं आती अमर ने शांतिपूर्वक कहा-काम करके कुछ उपार्जन करना शर्म की बात नहीं : दूसरों का मुंह ताकना शर्म की बात है। 'तो ये धानियों के जितने लड़के हैं, सभी बेशर्म हैं?'

'हैं ही, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अब तो लालाजी मुझे खुशी से भी रुपये दें तो न लूं। जब तक अपनी सामर्थ्य का ज्ञान न था, तब तक उन्हें कष्ट देता था। जब मालूम हो गया कि मैं अपने खर्च भर को कमा सकता हूं, तो किसी के सामने हाथ क्यों फैलाऊं?'

सुखदा ने निर्दयता के साथ कहा-तो जब तुम अपने पिता से कुछ लेना अपमान की बात समझते हो, तो मैं क्यों उनकी आश्रित बनकर रहूं- इसका आशय तो यही हो सकता है कि मैं भी किसी पाठशाला में नौकरी करूं या सीने-पिरोने का धंधा उठाऊं-

अमरकान्त ने संकट में पड़कर कहा-तुम्हारे लिए इसकी जरूरत नहीं।

'क्यों मैं खाती-पहनती हूं, गहने बनवाती हूं, पुस्तकें लेती हूं, पत्रिकाएं मंगवाती हूं, दूसरों ही की कमाई पर तो- इसका तो यह आशय भी हो सकता है कि मुझे तुम्हारी कमाई पर भी कोई अधिकार नहीं। मुझे खुद परिश्रम करके कमाना चाहिए।'

अमरकान्त को संकट से निकलने की एक युक्ति सूझ गई-अगर दादा, या तुम्हारी अम्मांजी तुमसे चिट्ठे और मैं भी ताने दूं, तब निस्संदेह तुम्हें खुद धान कमाने की जरूरत पड़ेगी।

'कोई मुंह से न कहे पर मन में तो समझ सकता है। अब तक तो मैं समझती थी, तुम पर मेरा अधिकार है। तुमसे जितना चाहूंगी, लड़कर ले लूंगी लेकिन अब मालूम हुआ, मेरा कोई अधिकार नहीं। तुम जब चाहो, मुझे जवाब दे सकते हो। यही बात है या कुछ और?'

अमरकान्त ने हारकर कहा-तो तुम मुझे क्या करने को कहती हो- दादा से हर महीने रुपये के लिए लड़ता रहूं-

सुखदा बोली-हां, मैं यही चाहती हूं। यह दूसरों की चाकरी छोड़ दो और घर का धंधा देखो। जितना समय उधर देते हो उतना ही समय घर के कामों में दो।

'मुझे इस लेन-देन, सूद-ब्याज से घृणा है।'

सुखदा मुस्कराकर बोली-यह तो तुम्हारा अच्छा तर्क है। मरीज को छोड़ दो, वह आप-ही-आप अच्छा हो जाएगा। इस तरह मरीज मर जाएगा, अच्छा न होगा। तुम दूकान पर जितनी देर बैठोगे, कम-से-कम उतनी देर तो यह घृणित व्यापार न होने दोगे। यह भी तो संभव है कि तुम्हारा अनुराग देखकर लालाजी सारा काम तुम्हीं को सौंप दें। तब तुम अपनी इच्छानुसार इसे चलाना। अगर अभी इतना भार नहीं लेना चाहते, तो न लो लेकिन लालाजी की मनोवृत्ति पर तो कुछ-न-कुछ प्रभाव डाल ही सकते हो। वह वही कर रहे हैं जो अपने-अपने ढंग से सारा संसार कर रहा है। तुम विरक्त होकर उनके विचार और नीति को नहीं बदल सकते। और अगर तुम अपना ही राग अलापोगे, तो मैं कहे देती हूं, अपने घर चली जाऊंगी। तुम जिस तरह जीवन व्यतीत करना चाहते हो, वह मेरे मन की बात नहीं। तुम बचपन से ठुकराए गए हो और कष्ट सहने में अभ्यस्त हो। मेरे लिए यह नया अनुभव है।

अमरकान्त परास्त हो गया। इसके कई दिन बाद उसे कई जवाब सूझे पर इस वक्त वह कुछ जवाब न दे सका। नहीं, उसे सुखदा की बातें न्याय-संगत मालूम हुईं। अभी तक उसकी स्वतंत्र कल्पना का आधार पिता की कृपणता थी। उसका अंकुर विमाता की निर्ममता ने जमाया था। तर्क या सिद्धांत पर उसका आधार न था और वह दिन तो अभी दूर, बहुत दूर था, जब उसके चित्ता की वृत्ति ही बदल जाए। उसने निश्चय किया-पत्र-व्यवहार का काम छोड़ दूंगा। दूकान पर बैठने में भी उसकी आपत्ति उतनी तीव्र न रही। हां, अपनी शिक्षा का खर्च वह पिता से लेने पर किसी तरह अपने मन को न दबा सका। इसके लिए उसे कोई दूसरा ही गुप्त मार्ग खोजना पड़ेगा। सुखदा से कुछ दिनों के लिए उसकी संधि-सी हो गई।

इसी बीच में एक और घटना हो गई, जिसने उसकी स्वतंत्र कल्पना को भी शिथिल कर दिया।

सुखदा इधर साल भर से मैके न गई थी। विधावा माता बार-बार बुलाती थीं, लाला अमरकान्त भी चाहते थे कि दो-एक महीने के लिए हो आए पर सुखदा जाने का नाम न लेती थी। अमरकान्त की ओर से निश्चिंत न हो सकती थी। वह ऐसे घोड़े पर सवार थी, जिसे नित्य फेरना लाजिमी था, दस-पांच दिन बंधा रहा, तो फिर पुट्टे पर हाथ ही न रखने देगा। इसीलिए वह अमरकान्त को छोड़कर न जाती थी।

अंत में माता ने स्वयं काशी आने का निश्चय किया। उनकी इच्छा अब काशीवास करने की भी हो गई। एक महीने तक अमरकान्त उनके स्वागत की तैयारियों में लगा रहा। गंगातट पर बड़ी मुश्किल से पसंद का घर मिला, जो न बहुत बड़ा था न बहुत छोटा। उसकी सफाई और सफेदी में कई दिन लगे। गृहस्थी की सैकड़ों ही चीजें जमा करनी थीं। उसके नाम सास ने एक हजार का बीमा भेज दिया था। उसने कतरब्योत से उसके आधो ही में सारा प्रबंध कर दिया। पाई-पाई का हिसाब लिखा तैयार था। जब सास जी प्रयाग का स्नान करती हुई, माघ में काशी पहुंचीं, तो वहां का सुप्रबंध देखकर बहुत प्रसन्न हुईं।

अमरकान्त ने बचत के पांच सौ रुपये उनके सामने रख दिए।

रेणुकादेवी ने चकित होकर कहा-क्या पांच सौ ही में सब कुछ हो गया- मुझे तो विश्वास नहीं आता।

'जी नहीं, पांच सौ ही खर्च हुए।'

'यह तो तुमने इनाम देने का काम किया है। यह बचत के रुपये तुम्हारे हैं।'

अमर ने झेंपते हुए कहा-जब मुझे जरूरत होगी, आपसे मांग लूंगा। अभी तो कोई ऐसी जरूरत नहीं है।

रेणुकादेवी रूप और अवस्था से नहीं, विचार और व्यवहार से वृद्धा थीं। ज्ञान और व्रत में उनकी आस्था न थी लेकिन लोकमत की अवहेलना न कर सकती थीं। विधावा का जीवन तप का जीवन है। लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता। रेणुका को विवश होकर धर्म का स्वांग भरना पड़ता था किंतु जीवन बिना किसी आधार के तो नहीं रह सकता। भोग-विलास, सैर-तमाशे से आत्मा उसी भांति संतुष्ट नहीं होती, जैसे कोई चटनी और अचार खाकर अपनी क्षुधा को शांत नहीं कर सकता। जीवन किसी तथ्य पर ही टिक सकता है। रेणुका के जीवन में यह आधार पशु-प्रेम था। वह अपने साथ पशु-पक्षियों का एक चिड़ियाघर लाई थीं। तोते, मैने, बंदर, बिल्ली, गाएं, हिरन, मोर, कुत्ते आदि पाल रखे थे और उन्हीं के सुख-दुख में सम्मिलित होकर जीवन में सार्थकता का अनुभव करती थीं। हर एक का अलग-अलग नाम था, रहने का अलग-अलग स्थान था, खाने-पीने के अलग-अलग बर्तन थे। अन्य रईसों की भांति उनका पशु-प्रेम नुमायशी, वशनेबल या मनोरंजक न था। अपने पशु-पक्षियों में उनकी जान बसती थी। वह उनके बच्चों को उसी मातृत्व-भरे स्नेह से खेलाती थीं मानो अपने नाती-पोते हों। ये पशु भी उनकी बातें, उनके इशारे, कुछ इस तरह समझ जाते थे कि आश्चर्य होता था।

दूसरे दिन मां-बेटी में बातें होने लगीं।

रेणुका ने कहा-तुझे ससुराल इतनी प्यारी हो गई-

सुखदा लज्जित होकर बोली-क्या करूं अम्मां, ऐसी उलझन में पड़ी हूं कि कुछ सूझता ही नहीं। बाप-बेटे में बिलकुल नहीं बनती। दादाजी चाहते हैं, वह घर का धंधा देखें। वह कहते हैं, मुझे इस व्यवसाय से घृणा है। मैं चली जाती, तो न जाने क्या दशा होती। मुझे बराबर खटका लगा रहता है कि वह देश-विदेश की राह न लें। तुमने मुझे कुएं में ढकेल दिया और क्या कहूं?

रेणुका चिंतित होकर बोलीं-मैंने तो अपनी समझ में घर-वर दोनों ही देखभाल कर विवाह किया था मगर तेरी तकदीर को क्या करती- लड़के से तेरी अब पटती है, या वही हाल है-

सुखदा फिर लज्जित हो गई। उसके दोनों कपोल लाल हो गए। सिर झुकाकर बोली-उन्हें अपनी किताबों और सभाओं से छुट्टी नहीं मिलती।

'तेरी जैसी रूपवती एक सीधे-सादे छोकरे को भी न संभाल सकी- चाल-चलन का कैसा है?'

सुखदा जानती थी, अमरकान्त में इस तरह की कोई दुर्वासना नहीं है पर इस समय वह इस बात को निश्चयात्मक रूप से न कह सकी। उसके नारीत्व पर धब्बा आता था। बोली-मैं किसी के दिल का हाल क्या जानूं, अम्मां इतने दिन हो गए, एक दिन भी ऐसा न हुआ होगा कि कोई चीज लाकर देते। जैसे चाहूं रहूं, उनसे कोई मतलब ही नहीं।

रेणुका ने पूछा-तू कभी कुछ पूछती है, कुछ बनाकर खिलाती है, कभी उसके सिर में तेल डालती है-

सुखदा ने गर्व से कहा-जब वह मेरी बात नहीं पूछते तो मुझे क्या गरज पड़ी है वह बोलते हैं, तो मैं बोलती हूं। मुझसे किसी की गुलामी नहीं होगी।

रेणुका ने ताड़ना दी-बेटी, बुरा न मानना, मुझे बहुत-कुछ तेरा ही दोष दीखता है। तुझे अपने रूप का गर्व है। तू समझती है, वह तेरे रूप पर मुग्धा होकर तेरे पैरों पर सिर सगड़ेगा। ऐसे मर्द होते हैं, यह मैं जानती हूँ पर वह प्रेम टिकाऊ नहीं होता। न जाने तू क्यों उससे तनी रहती है- मुझे तो वह बड़ा गरीब और बहुत ही विचारशील मालूम होता है। सच कहती हूँ, मुझे उस पर दया आती है। बचपन में तो बेचारे की माँ मर गई। विमाता मिली, वह डाइन। बाप हो गया शत्रु। घर को अपना घर न समझ सका। जो हृदय चिंता-भार से इतना दबा हुआ हो, उसे पहले स्नेह और सेवा से पोला करने के बाद तभी प्रेम का बीज बोया जा सकता है।

सुखदा चिढ़कर बोली-वह चाहते हैं, मैं उनके साथ तपस्विनी बनकर रहूँ। रूखा-सूखा खाऊँ, मोटा-झोटा पहनूँ और वह घर से अलग होकर मेहनत और मजूरी करें। मुझसे यह न होगा, चाहे सदैव के लिए उनसे नाता ही टूट जाए। वह अपने मन की करेंगे, मेरे आराम-तकलीफ की बिलकुल परवाह न करेंगे, तो मैं भी उनका मुँह न जोहूँगी।

रेणुका ने तिरस्कार भरी चितवनों से देखा और बोली-और अगर आज लाला समरकान्त का दीवाला पिट जाए-

सुखदा ने इस संभावना की कभी कल्पना ही न की थी।

विमूढ़ होकर बोली-दीवाला क्यों पिटने लगा-

'ऐसा संभव तो है।'

सुखदा ने माँ की संपत्ति का आश्रय न लिया। वह न कह सकी, 'तुम्हारे पास जो कुछ है, वह भी तो मेरा ही है।' आत्म-सम्मान ने उसे ऐसा न कहने दिया। माँ के इस निर्दय प्रश्न पर झुंझलाकर बोली-जब मौत आती है, तो आदमी मर जाता है। जान-बूझकर आग में नहीं कूदा जाता।

बातों-बातों में माता को ज्ञात हो गया कि उनकी संपत्ति का वारिस आने वाला है। कन्या के भविष्य के विषय में उन्हें बड़ी चिंता हो गई थी। इस संवाद ने उस चिंता का शमन कर दिया।

उन्होंने आनंद विह्वल होकर सुखदा को गले लगा लिया।

पांच

अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था। जब उसकी माता का अवसान हुआ, तब वह बहुत छोटा था। उस दूर अतीत की कुछ धाँधली-सी और इसीलिए अत्यंत मनोहर और सुखद स्मृतियाँ शेष थीं। उसका वेदनामय बाल-रुदन सुनकर जैसे उसकी माता ने रेणुकादेवी के रूप में स्वर्ग से आकर उसे गोद में उठा लिया। बालक अपना रोना-धोना भूल गया और उस ममता-भरी गोद में मुँह छिपाकर दैवी-सुख लूटने लगा। अमरकान्त नहीं-नहीं करता रहता और माता उसे पकड़कर उसके आगे मेवे और मिठाइयाँ रख देतीं। उसे इंकार न करते बनता। वह देखता, माता उसके लिए कभी कुछ पका रही हैं, कभी कुछ, और उसे खिलाकर कितनी प्रसन्न होती हैं, तो उसके हृदय में श्रद्धा की एक लहर-सी उठने लगती है। वह कॉलेज से लौटकर सीधे रेणुका के पास जाता। वहाँ उसके लिए जलपान रखे हुए रेणुका उसकी बाट जोहती रहती। प्रातः का नाश्ता भी वह वहीं करता। इस मातृ-स्नेह से उसे तृप्ति ही न होती थी। छुट्टियों के दिन वह प्रायः दिन-भर रेणुका ही के यहाँ रहता। उसके साथ कभी-कभी नैना भी चली जाती। वह खासकर पशु-पक्षियों की क्रीड़ा देखने जाती थी।

अमरकान्त के कोष में स्नेह आया, तो उसकी वह कृपणता जाती रही। सुखदा उसके समीप आने लगी। उसकी

विलासिता से अब उसे उतना भय न रहा। रेणुका के साथ उसे लेकर वह सैर-तमाशे के लिए भी जाने लगा। रेणुका दसवें-पांचवें उसे दस-बीस रुपये जरूर दे देतीं। उसके सप्रेम आग्रह के सामने अमरकान्त की एक न चलती। उसके लिए नए-नए सूट बने, नए-नए जूते आए, मोटर साइकिल आई, सजावट के सामान आए। पांच ही छः महीने में वह विलासिता का द्रोही, वह सरल जीवन का उपासक, अच्छा-खास रईसजादा बन बैठा, रईसजादों के भावों और विचारों से भरा हुआ उतना ही निद्राकुल और स्वार्थी। उसकी जेब में दस-बीस रुपये हमेशा पड़े रहते। खुद खाता, मित्रों को खिलाता और एक की जगह दो खर्च करता। वह अध्ययनशीलता जाती रही। ताश और चौसर में ज्यादा आनंद आता। हां, जलसों में उसे अब और अधिक उत्साह हो गया। वहां उसे कीर्ति-लाभ का अवसर मिलता था। बोलने की शक्ति उसमें पहले भी बुरी न थी। अभ्यास से और भी परिमार्जित हो गई। दैनिक समाचार और सामयिक साहित्य से भी उसे रुचि थी, विशेषकर इसलिए कि रेणुका रोज-रोज की खबरें उससे पढ़वाकर सुनती थीं।

दैनिक समाचार-पत्रों के पढ़ने से अमरकान्त के राजनैतिक ज्ञान का विकास होने लगा। देशवासियों के साथ शासक मंडल की कोई अनीति देखकर उसका खून खौल उठता था। जो संस्थाएं राष्ट्रीय उत्थान के लिए उद्योग कर रही थीं, उनसे उसे सहानुभूति हो गई। वह अपने नगर की कांग्रेस-कमेटी का मेम्बर बन गया और उसके कार्यक्रम में भाग लेने लगा।

एक दिन कॉलेज के कुछ छात्र देहातों की आर्थिक-दशा की जांच-पड़ताल करने निकले। सलीम और अमर भी चले। अध्यापक डॉ. शान्तिकुमार उनके नेता बनाए गए। कई गांवों की पड़ताल करने के बाद मंडली संस्था समय लौटने लगी, तो अमर ने कहा-मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है।

सलीम बोला-तालाब के किनारे वह जो चार-पांच घर मल्लाहों के थे, उनमें तो लोहे के दो-एक बर्तन के सिवा कुछ था ही नहीं। मैं समझता था, देहातियों के पास अनाज की बखारें भरी होंगी लेकिन यहां तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे।

शान्तिकुमार बोले-सभी किसान इतने गरीब नहीं होते। बड़े किसानों के घर में बखारें भी होती हैं लेकिन ऐसे किसान गांव में दो-चार से ज्यादा नहीं होते।

अमरकान्त ने विरोध किया-मुझे तो इन गांवों में एक भी ऐसा किसान न मिला। और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चूसते हैं मैं चाहता हूं उन लोगों को इन बेचारों पर दया भी नहीं आती शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा-दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा हुई और यह दोनों हल्के पड़े। अब तो न्याय-परीक्षा का युग है।

शान्तिकुमार की अवस्था कोई पैंतीस की थी। गोरे-चिट्टे, रूपवान आदमी थे। वेश-भूषा अंग्रेजी थी, और पहली नजर में अंग्रेज ही मालूम होते थे क्योंकि उनकी आंखें नीली थीं, और बाल भी भूरे थे। आक्सफोर्ड से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त कर लाए थे। विवाह के कष्ट विरोधी, स्वतंत्रता-प्रेम के कष्ट भक्त, बहुत ही प्रसन्न मुख, सहृदय, सेवाशील व्यक्ति थे। मजाक का कोई अवसर पाकर न चूकते थे। छात्रों से मित्र भाव रखते थे। राजनैतिक आंदोलनों में खूब भाग लेते पर गुप्त रूप से। खुले मैदान में न आते। हां, सामाजिक क्षेत्र में खूब गरजते थे।

अमरकान्त ने करुण स्वर में कहा-मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं भूलती, जो छः महीने से बीमार पड़ा था और एक पैसे की भी दवा न ली थी। इस दशा में जमींदार ने लगान की डिगरी करा ली और जो कुछ घर में था, नीलाम करा लिया। बैल तक बिकवा लिए। ऐसे अन्यायी संसार की नियंता कोई चेतन शक्ति है, मुझे तो इसमें संदेह हो रहा है। तुमने

देखा नहीं सलीम, गरीब के बदन पर चिथड़े तक न थे। उसकी वृद्धा माता कितना डुट-डुटकर रोती थीं।

सलीम की आंखों में आंसू थे। बोला-तुमने रुपये दिए, तो बुढ़िया कैसे तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ी। मैं तो अलग मुंह फेरकर रो रहा था।

मंडली यों ही बातचीत करती चली जाती थी। अब पक्की सड़क मिल गई थी। दोनों तरफ ऊंचे वृक्षों ने मार्ग को अंधोरा कर दिया था। सड़क के दाहिने-बाएं-नीचे ऊख, अरहर आदि के खेत खड़े थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर दो-एक मजूर या राहगीर मिल जाते थे।

सहसा एक वृक्ष के नीचे दस-बारह स्त्री-पुरुष सशंकित भाव से दुबके हुए दिखाई दिए। सब-के-सब सामने वाले अरहर के खेत की ओर ताकते और आपस में कनफुसकियां कर रहे थे। अरहर के खेत की मेड़ पर दो गोरे सैनिक हाथ में बेंत लिए अकड़े खड़े थे। छात्र-मंडली को कौतूहल हुआ। सलीम ने एक आदमी से पूछा-क्या माजरा है, तुम लोग क्यों जमा हो-

अचानक अरहर के खेत की ओर से किसी औरत का चीत्कार सुनाई पड़ा। छात्र वर्ग अपने डंडे संभालकर खेत की तरफ लपका। परिस्थिति उनकी समझ में आ गई थी।

एक गोरे सैनिक ने आंखें निकालकर छड़ी दिखाते हुए कहा-भाग जाओ नहीं हम ठोकर मारेगा।

इतना उसके मुंह से निकलना था कि डॉ. शान्तिकुमार ने लपककर उसके मुंह पर घूंसा मारा। सैनिक के मुंह पर घूंसा पड़ा, तिलमिला उठा पर था घूंसेबाजी में मंजा हुआ। घूंसे का जवाब जो दिया, तो डॉक्टर साहब गिर पड़े। उसी वक्त सलीम ने अपनी हाकी-स्टिक उस गोरे के सिर पर जमाई। वह चौंधिया गया, जमीन पर गिर पड़ा और जैसे मूर्छित हो गया। दूसरे सैनिक को अमर और एक दूसरे छात्र ने पीटना शुरू कर दिया था पर वह इन दोनों युवकों पर भारी था। सलीम इधर से फुर्सत पाकर उस पर लपका। एक के मुकाबले में तीन हो गए। सलीम की स्टिक ने इस सैनिक को भी जमीन पर सुला दिया। इतने में अरहर के पौधों को चीरता हुआ तीसरा गोरा आ पहुंचा। डॉक्टर शान्तिकुमार संभलकर उस पर लपके ही थे कि उसने रिवाल्वर निकलकर दाग दिया। डॉक्टर साहब जमीन पर गिर पड़े। अब मामला नाजुक था। तीनों छात्र डॉक्टर साहब को संभालने लगे। यह भय भी लगा हुआ था कि वह दूसरी गोली न चला दे। सबके प्राण नहीं में समाए हुए थे।

मजूर लोग अभी तक तो तमाशा देख रहे थे। मगर डॉक्टर साहब को गिरते देख उनके खून में भी जोश आया। भय की भांति साहस भी संक्रामक होता है। सब-के-सब अपनी लकड़ियां संभालकर गोरे पर दौड़े। गोरे ने रिवाल्वर दागी पर निशाना खाली गया। इसके पहले कि वह तीसरी गोली चलाए, उस पर डंडों की वर्षा होने लगी और एक क्षण में वह भी आहत होकर गिर पड़ा।

खैरियत यह हुई कि जख्म डॉक्टर साहब की जांघ में था। सभी छात्र 'तत्कालधर्म' जानते थे। घाव का खून बंद किया और पट्टी बंधा दी।

उसी वक्त एक युवती खेत से निकली और मुंह छिपाए, लंगड़ाती, कपड़े संभालती, एक तरफ चल पड़ी। अबला लज्जावश, किसी से कुछ कहे बिना, सबकी नजरों से दूर निकल जाना चाहती थी। उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था- दुष्टों को मार डालो, इससे तुम्हारी न्याय-बुद्धि को संतोष होगा,

उसकी तो जो चीज गई, वह गई। वह अपना दुख क्यों रोए- क्यों फरियाद करे- सारे संसार की सहानुभूति, उसके किस काम की है।

सलीम एक क्षण तक युवती की ओर ताकता रहा। फिर स्टिक संभालकर उन तीनों को पीटने लगा ऐसा जान पड़ता था कि उन्मत्ता हो गया है।

डॉक्टर साहब ने पुकारा-क्या करते हो सलीम इससे क्या फायदा- यह इंसानियत के खिलाफ है कि गिरे हुएओं पर हाथ उठाया जाए।

सलीम ने दम लेकर कहा-मैं एक शैतान को भी जिंदा न छोड़ूंगा। मुझे फांसी हो जाए, कोई गम नहीं। ऐसा सबक देना चाहिए कि फिर किसी बदमाश को इसकी जुर्रत न हो।

फिर मजूरों की तरफ देखकर बोला-तुम इतने आदमी खड़े ताकते रहे और तुमसे कुछ न हो सका। तुममें इतनी गैरत भी नहीं- अपनी बहू-बेटियों की आबरू की हिफाजत भी नहीं कर सकते- समझते होंगे कौन हमारी बहू-बेटी हैं। इस देश में जितनी बेटियां हैं, जितनी बहूएं हैं, सब तुम्हारी बहूएं हैं, जितनी माएं हैं, सब तुम्हारी माएं हैं। तुम्हारी आंखों के सामने यह अनर्थ हुआ और तुम कायरों की तरह खड़े ताकते रहे क्यों सब-के-सब जाकर मर नहीं गए।

सहसा उसे खयाल आ गया कि मैं आवेश में आकर इन गरीबों को फटकार बताने की अनाधिकार चेष्टा कर रहा हूं। वह चुप हो गया और कुछ लज्जित भी हुआ।

समीप के एक गांव से बैलगाड़ी मंगाई गई। शान्तिकुमार को लोगों ने उठाकर उस पर लेटा दिया और गाड़ी चलने को हुई कि डॉक्टर साहब ने चौंककर पूछा-और उन तीनों आदमियों को क्या यहीं छोड़ जाओगे-

सलीम ने मस्तक सिकोड़कर कहा-हम उनको लादकर ले जाने के जिम्मेदार नहीं हैं। मेरा तो जी चाहता है, उन्हें खोदकर दफन कर दूं।

आखिर डॉक्टर के बहुत समझाने के बाद सलीम राजी हुआ। तीनों गोरे भी गाड़ी पर लादे गए और गाड़ी चली। सब-के-सब मजूर अपराधियों की भांति सिर झुकाए कुछ दूर तक गाड़ी के पीछे-पीछे चले। डॉक्टर ने उनको बहुत धान्यवाद देकर विदा किया। नौ बजते-बजते समीप का रेलवे स्टेशन मिला। इन लोगों ने गोरों को तो वहीं पुलिस के चार्ज में छोड़ दिया और आप डॉक्टर साहब के साथ गाड़ी पर बैठकर घर चले।

सलीम और अमर तो जरा देर में हंसने-बोलने लगे। इस संग्राम की चर्चा करते उनकी जबान न थकती थी। स्टेशन-मास्टर से कहा, गाड़ी में मुसाफिरों से कहा, रास्ते में जो मिला उससे कहा। सलीम तो अपने साहस और शौर्य की खूब डींगें मारता था, मानो कोई किला जीत आया है और जनता को चाहिए कि उसे मुकुट पहनाए, उसकी गाड़ी खींचे, उसका जुलूस निकाले किंतु अमरकान्त चुपचाप डॉक्टर साहब के पास बैठा हुआ था। आज के अनुभव ने उसके हृदय पर ऐसी चोट लगाई थी, जो कभी न भरेगी। वह मन-ही-मन इस घटना की व्याख्या कर रहा था। इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई- यह गोरे सिपाही

इंग्लैंड के निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका इतना साहस कैसे हुआ- इसीलिए कि भारत पराधीन है। यह लोग जानते हैं कि यहां के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है। वह जो अनर्थ चाहें, करें। कोई चूं नहीं कर सकता। यह आतंक दूर करना होगा। इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा।

इस जंजीर को तोड़ने के लिए वह तरह-तरह के मंसूबे बंधाने लगा, जिनमें यौवन का उन्माद था, लड़कपन की उग्रता थी और थी कच्ची बुद्धि की बहक।

छः _____

डॉ. शान्तिकुमार एक महीने तक अस्पताल में रहकर अच्छे हो गए। तीनों सैनिकों पर क्या बीती, नहीं कहा जा सकता पर अच्छे होते ही पहला काम जो डॉक्टर साहब ने किया, वह तांगे पर बैठकर छावनी में जाना और उन सैनिकों की कुशल पूछना था। मालूम हुआ कि वह तीनों भी कई-कई दिन अस्पताल में रहे, फिर तबदील कर दिए गए। रेजिमेंट के कप्तान ने डॉक्टर साहब से अपने आदमियों के अपराध की क्षमा मांगी और विश्वास दिलाया कि भविष्य में सैनिकों पर ज्यादा कड़ी निगाह रखी जाएगी। डॉक्टर साहब की इस बीमारी में अमरकान्त ने तन-मन से उनकी सेवा की, केवल भोजन करने और रेणुका से मिलने के लिए घर जाता, बाकी सारा दिन और सारी रात उन्हीं की सेवा में व्यतीत करता। रेणुका भी दो-तीन बार डॉक्टर साहब को देखने गई।

इधर से फुरसत पाते ही अमरकान्त कांग्रेस के कामों में ज्यादा उत्साह से शरीक होने लगा। चंदा देने में तो बस संस्था में कोई उसकी बराबरी न कर सकता था।

एक बार एक आम जलसे में वह ऐसी उदड़ता से बोला कि पुलिस के सुपरिंटेंडेंट ने लाला समरकान्त को बुलाकर लड़के को संभालने की चेतावनी दे डाली। लालाजी ने वहां से लौटकर खुद तो अमरकान्त से कुछ न कहा, सुखदा और रेणुका दोनों से जड़ दिया। अमरकान्त पर अब किसका शासन है, वह खुद समझते थे। इधर बेटे से वह स्नेह करने लगे थे। हर महीने पढ़ाई का खर्च देना पड़ता था, तब उसका स्कूल जाना उन्हें जहर लगता था, काम में लगाना चाहते थे और उसके काम न करने पर बिगड़ते थे। अब पढ़ाई का कुछ खर्च न देना पड़ता था। इसलिए कुछ न बोलते थे बल्कि कभी-कभी संदूक की कुंजी न मिलने या उठकर संदूक खोलने के कष्ट से बचने के लिए, बेटे से रुपये उधर ले लिया करते। अमरकान्त न मांगता, न वह देते।

सुखदा का प्रसवकाल समीप आता जाता था। उसका मुख पीला पड़ गया था। भोजन बहुत कम करती थी और हंसी-बोलती भी बहुत कम थी। वह तरह-तरह के दुःस्वप्न देखती रहती थी, इससे चित्ता और भी सशंकित रहता था। रेणुका ने जनन-संबंधी कई पुस्तकें उसको मंगा दी थीं। इन्हें पढ़कर वह और भी चिंतित रहती थी। शिशु की कल्पना से चित्ता में एक गर्वमय उल्लास होता था पर इसके साथ ही हृदय में कंपन भी होता था न जाने क्या होगा?

उस दिन संध्या समय अमरकान्त उसके पास आया, तो वह जली बैठी थी। तीक्ष्ण नेत्रों से देखकर बोली-तुम मुझे थोड़ी-सी संख्या क्यों नहीं दे देते- तुम्हारा गला भी छूट जाए, मैं भी जंजाल से मुक्त हो जाऊं।

अमर इन दिनों आदर्श पति बना हुआ था। रूप-ज्योति से चमकती हुई सुखदा आंखों को उन्मत्ता करती थी पर मातृत्व के भार से लदी हुई यह पीले मुख वाली रोगिणी उसके हृदय को ज्योति से भर देती थी। वह उसके पास बैठा हुआ उसके रूखे केशों और सूखे हाथों से खेला करता। उसे इस दशा में लाने का अपराधी वह है इसलिए इस भार को सह्य बनाने के लिए वह सुखदा का मुंह जोहता रहता था। सुखदा उससे कुछ फरमाइश करे, यही इन दिनों उसकी सबसे बड़ी कामना थी। वह एक बार स्वर्ग के तारे तोड़ लाने पर भी उताई हो जाता। बराबर उसे अच्छी-अच्छी किताबें सुनाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता था। शिशु की कल्पना से उसे जितना आनंद होता था उससे कहीं अधिक सुखदा के विषय में चिंता थी-न जाने क्या होगा- घबराकर भारी स्वर में बोला-ऐसा क्यों कहती हो सुखदा, मुझसे गलती

हुई हो तो, बता दो?

सुखदा लेटी हुई थी। तकिए के सहारे टेक लगाकर बोली-तुम आम जलसों में कड़ी-कड़ी स्पीचें देते फिरते हो, इसका इसके सिवा और क्या मतलब है कि तुम पकड़े जाओ और अपने साथ घर को भी ले डूबो। दादा से पुलिस के किसी बड़े अफसर ने कहा है। तुम उनकी कुछ मदद तो करते नहीं, उल्टे और उनके किए-कराए को धूल में मिलाने को तुले बैठे हो। मैं तो आप ही अपनी जान से मर रही हूं, उस पर तुम्हारी यह चाल और भी मारे डालती है। महीने भर डॉक्टर साहब के पीछे हलकान हुए। उधर से छुट्टी मिली तो यह पचड़ा ले बैठे। क्या तुमसे शांतिपूर्वक नहीं बैठा जाता- तुम अपने मालिक नहीं हो, कि जिस राह चाहो, जाओ। तुम्हारे पांव में बेड़ियां हैं। क्या अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं-

अमरकान्त ने अपनी सफाई दी-मैंने तो कोई ऐसी स्पीच नहीं दी जो कड़ी कही जा सके।

'तो दादा झूठ कहते थे?'

'इसका तो यह अर्थ है कि मैं अपना मुंह सी लूं?'

'हां, तुम्हें अपना मुंह सीना पड़ेगा।'

दोनों एक क्षण भूमि और आकाश की ओर ताकते रहे। तब अमरकान्त ने परास्त होकर कहा-अच्छी बात है। आज से अपना मुंह सी लूंगा। फिर तुम्हारे सामने ऐसी शिकायत आए, तो मेरे कान पकड़ना।

सुखदा नरम होकर बोली-तुम नाराज होकर यह प्रण नहीं कर रहे हो- मैं तुम्हारी अप्रसन्नता से थर-थर कांपती हूं। मैं भी जानती हूं कि हम लोग पराधीन हैं। पराधीनता मुझे भी उतनी ही अखरती है जितनी तुम्हें। हमारे पांवों में तो दोहरी बेड़ियां हैं-समाज की अलग, सरकार की अलग लेकिन आगे-पीछे भी तो देखना होता है। देश के साथ हमारा जो धर्म है, वह और प्रबल रूप में पिता के साथ है, और उससे भी प्रबल रूप में अपनी संतान के साथ। पिता को दुखी और संतान को निस्सहाय छोड़कर देश धर्म का पालन ऐसा ही है जैसे कोई अपने घर में आग लगाकर खुले आकाश में रहे। जिस शिशु को मैं अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाल रही हूं, उसे मैं चाहती हूं, तुम भी अपना सर्वस्व समझो। तुम्हारे सारे स्नेह और निष्ठा का मैं एकमात्र उसी को अधिकारी देखना चाहती हूं।

अमरकान्त सिर झुकाए यह उपदेश सुनता रहा। उसकी आत्मा लज्जित थी और उसे धिक्कार रही थी। उसने सुखदा और शिशु दोनों ही के साथ अन्याय किया है। शिशु का कल्पना-चित्र उसी आंखों में खींच गया। वह नवनीत-सा कोमल शिशु उसकी गोद में खेल रहा था। उसकी संपूर्ण चेतना इसी कल्पना में मग्न हो गई। दीवार पर शिशु कृष्ण का एक सुंदर चित्र लटक रहा था। उस चित्र में आज उसे जितना मार्मिक आनंद हुआ, उतना और कभी न हुआ था। उसकी आंखें सजल हो गईं।

सुखदा ने उसे एक पान का बीड़ा देते हुए कहा-अम्मां कहती हैं, बच्चे को लेकर मैं लखनऊ चली जाऊंगी। मैंने कहा-अम्मां, तुम्हें बुरा लगे या भला, मैं अपना बालक न दूंगी।

अमरकान्त ने उत्सुक होकर पूछा-तो बिगड़ी होंगी-

'नहीं जी, बिगड़ने की क्या बात थी- हां, उन्हें कुछ बुरा जरूर लगा होगा लेकिन मैं दिल्ली में भी अपने सर्वस्व को नहीं छोड़ सकती।'

'दादा ने पुलिस कर्मचारी की बात अम्मां से भी कही होगी?'

'हां, मैं जानती हूं कही है। जाओ, आज अम्मां तुम्हारी कैसी खबर लेती हैं।'

'मैं आज जाऊंगा ही नहीं।'

'चलो, मैं तुम्हारी वकालत कर दूंगी।'

'मुआफ कीजिए। वहां मुझे और भी लज्जित करोगी।'

'नहीं सच कहती हूं। अच्छा बताओ, बालक किसको पड़ेगा, मुझे या तुम्हें। मैं कहती हूं तुम्हें पड़ेगा।'

'मैं चाहता हूं तुम्हें पड़े।'

'यह क्यों- मैं तो चाहती हूं तुम्हें पड़े।'

'तुम्हें पड़ेगा, तो मैं उसे और ज्यादा चाहूंगा।'

'अच्छा, उस स्त्री की कुछ खबर मिली जिसे गोरों ने सताया था?'

'नहीं, फिर तो कोई खबर न मिली।'

'एक दिन जाकर सब कोई उसका पता क्यों नहीं लगाते, या स्पीच देकर ही अपने कर्तव्य से मुक्त हो गए?'

अमरकान्त ने झेंपते हुए कहा-कल जाऊंगा।

'ऐसी होशियारी से पता लगाओ कि किसी को कानों-कान खबर न हो अगर घर वालों ने उसका बहिष्कार कर दिया हो, तो उसे लाओ। अम्मां को उसे अपने साथ रखने में कोई आपत्ति न होगी, और यदि होगी तो मैं अपने पास रख लूंगी।'

अमरकान्त ने श्रद्धा-पूर्ण नेत्रों से सुखदा को देखा। इसके हृदय में कितनी दया, कितना सेवा-भाव, कितनी निर्भीकता है। इसका आज उसे पहली बार ज्ञान हुआ।

उसने पूछा-तुम्हें उससे जरा भी घृणा न होगी?

सुखदा ने सकुचाते हुए कहा-अगर मैं कहूं, न होगी, तो असत्य होगा। होगी अवश्य पर संस्कारों को मिटाना होगा। उसने कोई अपराध नहीं किया, फिर सजा क्यों दी जाए-

अमरकान्त ने देखा, सुखदा निर्मल नारीत्व की ज्योति में नहा उठी है। उसका देवीत्व जैसे प्रस्फुटित होकर उससे आलिंगन कर रहा है।

सात

अमरकान्त ने आम जलसों में बोलना तो दूर रहा, शरीक होना भी छोड़ दिया पर उसकी आत्मा इस बंधन से छटपटाती रहती थी और वह कभी-कभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में अपने मनोविकारों को प्रकट करके संतोष लाभ करता था। अब वह कभी-कभी दूकान पर भी आ बैठता। विशेषकर छुट्टियों के दिन तो वह अधिकतर दूकान पर रहता था। उसे अनुभव हो रहा था कि मानवी प्रकृति का बहुत-कुछ ज्ञान दूकान पर बैठकर प्राप्त किया जा सकता है। सुखदा और रेणुका दोनों के स्नेह और प्रेम ने उसे जकड़ लिया था। हृदय की जलन जो पहले घर वालों से, और उसके फलस्वरूप, समाज से विद्रोह करने में अपने को सार्थक समझती थी, अब शांत हो गई थी। रोता हुआ बालक मिठाई

पाकर रोना भूल गया।

एक दिन अमरकान्त दूकान पर बैठा था कि एक असामी ने आकर पूछा-भैया कहां हैं बाबूजी, बड़ा जरूरी काम था-अमर ने देखा-अधोड़, बलिष्ठ, काला, कठोर आकृति का मनुष्य है। नाम है काले खां। रूखाई से बोला-वह कहीं गए हुए हैं। क्या काम है-

'बड़ा जरूरी काम था। कुछ कह नहीं गए, कब तक आएंगे?'

अमर को शराब की ऐसी दुर्घंधा आई कि उसने नाक बंद कर ली और मुंह फेरकर बोला-क्या तुम शराब पीते हो-काले खां ने हंसकर कहा-शराब किसे मयस्सर होती है लाला, रूखी रोटियां तो मिलती नहीं- आज एक नातेदारी में गया था, उन लोगों ने पिला दी।

वह और समीप आ गया और अमर के कान के पास मुंह लगाकर बोला-एक रकम दिखाने लाया था। कोई दस तोले की होगी। बाजार में ढाई सौ से कम नहीं है लेकिन मैं तुम्हारा पुराना असामी हूं। जो कुछ दे दोगे, ले लूंगा।

उसने कमर से एक जोड़ा सोने के कड़े निकाले और अमर के सामने रख दिए। अमर ने कड़ां को बिना उठाए हुए पूछा-यह कड़े तुमने कहां पाए-

काले खां ने बेहयाई से मुस्कराकर कहा-यह न पूछो राजा, अल्लाह देने वाला है।

अमरकान्त ने घृणा का भाव दिखाकर कहा-कहीं से चुरा लाए होंगे-

काले खां फिर हंसा-चोरी किसे कहते हैं राजा, यह तो अपनी खेती है। अल्लाह ने सबके पीछे हीला लगा दिया है। कोई नौकरी करके लाता है, कोई मजूरी करता है, कोई रोजगार करता है, देता सबको वही खुदा है। तो फिर निकलो रुपये, मुझे देर हो रही है। इन लाल पगड़ी वालों की बड़ी खातिर करनी पड़ती है भैया, नहीं एक दिन काम न चले।

अमरकान्त को यह व्यापार इतना जघन्य जान पड़ा कि जी में आया काले खां को दुत्कार दे। लाला अमरकान्त ऐसे समाज के शत्रुओं से व्यवहार रखते हैं, यह खयाल करके उसके रोएं खड़े हो गए। उसे उस दूकान से, उस मकान से, उस वातावरण से, यहां तक कि स्वयं अपने आपसे घृणा होने लगी। बोला-मुझे इस चीज की जरूरत नहीं है। इसे ले जाओ, नहीं मैं पुलिस में इत्तिला कर दूंगा। फिर इस दूकान पर ऐसी चीज लेकर न आना, कहे देता हूं।

काले खां जरा भी विचलित न हुआ, बोला-यह तो तुम बिलकुल नई बात कहते हो भैया लाला इस नीति पर चलते, तो आज महाजन न होते। हजारों रुपये की चीज तो मैं ही दे गया हूंगा। अंगनू महाजन, भिखारी, हींगन, सभी से लाला का व्यवहार है। कोई चीज हाथ लगी और आंख बंद करके यहां चले आए, दाम लिया और घर की राह ली। इसी दूकान से बाल-बच्चों का पेट चलता है। कांटा निकलकर तौल लो। दस तोले से कुछ ऊपर ही निकलेगा मगर यहां पुरानी जजमानी है, लाओ डेढ़ सौ ही दो, अब कहां दौड़ते फिरें-

अमर ने दृढ़ता से कहा-मैंने कह दिया मुझे इसकी जरूरत नहीं।

'पछताओगे लाला, खड़े-खड़े ढाई सौ में बेच लोगे।'

'क्यों सिर खा रहे हो, मैं इसे नहीं लेना चाहता?'

'अच्छा लाओ, सौ ही रुपये दे दो। अल्लाह जानता है, बहुत बल खाना पड़ रहा है पर एक बार घाटा ही सही।'

'तुम व्यर्थ मुझे दिख रहे हो। मैं चोरी का माल नहीं लूंगा, चाहे लाख की चीज धोले में मिले। तुम्हें चोरी करते शर्म भी नहीं आती ईश्वर ने हाथ-पांव दिए हैं, खासे मोटे-ताजे आदमी हो, मजदूरी क्यों नहीं करते- दूसरों का माल उड़ाकर अपनी दुनिया और आकबत दोनों खराब कर रहे हो।'

काले खां ने ऐसा मुंह बनाया, मानो ऐसी बकवास बहुत सुन चुका है और बोला-तो तुम्हें नहीं लेना है-

'नहीं।'

'पचास देते हो?'

'एक कौड़ी नहीं।'

काले खां ने कड़े उठाकर कमर में रख लिए और दूकान के नीचे उतर गया। पर एक क्षण में फिर लौटकर बोला-अच्छा तीस रुपये ही दे दो। अल्लाह जानता है, पगड़ी वाले आधा ले लेंगे।

अमरकान्त ने उसे धाक्का देकर कहा-निकल जा यहां से सूअर, मुझे क्यों हैरान कर रहा है-

काले खां चला गया, तो अमर ने उस जगह को झाड़ू से साफ कराया और अगरबत्ती जलाकर रख दी। उसे अभी तक शराब की दुर्गंध आ रही थी। आज उसे अपने पिता से जितनी अभक्ति हुई, उतनी कभी न हुई थी। उस घर की वायु तक उसे दूषित लगने लगी। पिता के हथकंडों से वह कुछ-कुछ परिचित तो था पर उनका इतना पतन हो गया है, इसका प्रमाण आज ही मिला। उसने मन में निश्चय किया आज पिता से इस विषय में खूब अच्छी तरह शास्त्रार्थ करेगा। उसने खड़े होकर अधीर नेत्रों से सड़क की ओर देखा। लालाजी का पता न था। उसके मन में आया, दूकान बंद करके चला जाए और जब पिताजी आ जाए तो साफ-साफ कह दे, मुझसे यह व्यापार न होगा। वह दूकान बंद करने ही जा रहा था कि एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आकर सामने खड़ी हो गई और बोली-लाला नहीं हैं क्या, बेटा -

बुढ़िया के बाल सन हो गए थे। देह की हड्डियां तक सूख गई थीं। जीवन-यात्रा के उस स्थान पर पहुंच गई थी, जहां से उसका आकार मात्र दिखाई देता था, मानो दो-एक क्षण में वह अदृश्य हो जाएगी।

अमरकान्त के जी में पहले तो आया कि कह दे, लाला नहीं हैं, वह आएंगे तब आना लेकिन बुढ़िया के पिचके हुए मुख पर ऐसी करुण याचना, ऐसी शून्य निराशा छाई हुई थी कि उसे उस पर दया आ गई। बोला-लालाजी से क्या काम है- वह तो कहीं गए हुए हैं।

बुढ़िया ने निराश होकर कहा-तो कोई हरज नहीं बेटा, मैं फिर आ जाऊंगी।

अमरकान्त ने नम्रता से कहा-अब आते ही होंगे, माता। ऊपर चली जाओ।

दूकान की कुरसी ऊंची थी। तीन सीढ़ियां चढ़नी पड़ती थीं। बुढ़िया ने पहली पट्टी पर पांव रखा पर दूसरा पांव ऊपर न उठा सकी। पैरों में इतनी शक्ति न थी। अमर ने नीचे आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे सहारा देकर दूकान पर चढ़ा दिया। बुढ़िया ने आशीर्वाद देते हुए कहा-तुम्हारी बड़ी उम्र हो बेटा, मैं यही डरती हूं कि लाला देर में आएंगे और अंधोरा हो गया, तो मैं घर कैसे पहुंचूंगी- रात को कुछ नहीं सूझता बेटा।

'तुम्हारा घर कहाँ है माता ?'

बुढ़िया ने ज्योतिहीन आंखों से उसके मुख की ओर देखकर कहा-गोवर्धन की सराय पर रहती हूं, बेटा।

'तुम्हारे और कोई नहीं है?'

'सब हैं भैया, बेटे हैं, पोते हैं, बहुएं हैं, पोतों की बहुएं हैं पर जब अपना कोई नहीं, तो किस काम का- नहीं लेते मेरी सुधा, न सही। हैं तो अपने। मर जाऊंगी, तो मिट्टी तो ठिकाने लगा देंगे।'

'तो वह लोग तुम्हें कुछ देते नहीं?'

बुढ़िया ने स्नेह मिले हुए गर्व से कहा-मैं किसी के आसरे-भरोसे नहीं हूं बेटा जीते रहें मेरा लाला समरकान्त, वह मेरी परवरिश करते हैं। तब तो तुम बहुत छोटे थे भैया, जब मेरा सरदार लाला का चपरासी था। इसी कमाई में खुदा ने कुछ ऐसी बरक्कत दी कि घर-द्वार बना, बाल-बच्चों का ब्याह-गौना हुआ, चार पैसे हाथ में हुए। थे तो पांच रुपये के प्यादे, पर कभी किसी से दबे नहीं, किसी के सामने गर्दन नहीं झुकाई। जहां लाला का पसीना गिरे, वहां अपना खून बहाने को तैयार रहते थे। आधी रात, पिछली रात, जब बुलाया, हाजिर हो गए। थे तो अदना-से नौकर, मुदा लाला ने कभी 'तुम' कहकर नहीं पुकारा। बराबर खां साहब कहते थे। बड़े-बड़े सेठिए कहते-खां साहब, हम इससे दूनी तलब देंगे, हमारे पास आ जाओ पर सबको यही जवाब देते कि जिसके हो गए उसके हो गए। जब तक वह दुत्कार न देगा, उसका दामन न छोड़ेंगे। लाला ने भी ऐसा निभाया कि क्या कोई निभाएगा- उन्हें मरे आज बीसवां साल है, वही तलब मुझे देते जाते हैं। लड़के पराए हो गए, पोते बात नहीं पूछते पर अल्लाह मेरे लाला को सलामत रखे, मुझे किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आई।

अमरकान्त ने अपने पिता को स्वार्थी, लोभी, भावहीन समझ रखा था। आज उसे मालूम हुआ, उनमें दया और वात्सल्य भी है। गर्व से उसका हृदय पुलकित हो उठा। बोला-तो तुम्हें पांच रुपये मिलते हैं-

'हां बेटा, पांच रुपये महीना देते जाते हैं।'

'तो मैं तुम्हें रुपये दिए देता हूं, लेती जाओ। लाला शायद देर में आएंगे।'

वृद्धा ने कानों पर हाथ रखकर कहा-नहीं बेटा, उन्हें आ जाने दो। लठिया टेकती चली जाऊंगी। अब तो यही आंख रह गई है।

'इसमें हर्ज क्या है- मैं उनसे कह दूंगा, पठानिन रुपये ले गई। अंधोरे में कहीं गिर-गिरा पड़ोगी।'

'नहीं बेटा, ऐसा काम नहीं करती, जिसमें पीछे से कोई बात पैदा हो। फिर आ जाऊंगी।'

नहीं, मैं बिना लिए न जाने दूंगा।'

बुढ़िया ने डरते-डरते कहा-तो लाओ दे दो बेटा, मेरा नाम टांक लेना पठानिन।

अमरकान्त ने रुपये दे दिए। बुढ़िया ने कांपते हाथों से रुपये लेकर गिरह बांधो और दुआएं देती हुई, धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरी मगर पचास कदम भी न गई होगी कि पीछे से अमरकान्त एक इक्का लिए हुए आया और बोला-बूढ़ी माता, आकर इक्के पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें पहुंचा दूं।

बुढ़िया ने आश्चर्यचकित नेत्रों से देखकर कहा-अरे नहीं, बेटा तुम मुझे पहुंचाने कहां जाओगे मैं लठिया टेकती हुई चली जाऊंगी। अल्लाह तुम्हें सलामत रखे।

अमरकान्त इक्का ला चुका था। उसने बुढ़िया को गोद में उठाया और इक्के पर बैठाकर पूछा-कहां चलूं-

बुढ़िया ने इक्के के डंडों को मजबूती से पकड़कर कहा-गोवर्धन की सराय चलो बेटा, अल्लाह तुम्हारी उम्र दराज करे। मेरा बच्चा इस बुढ़िया के लिए इतना हैरान हो रहा है। इतनी दूर से दौड़ा आया। पढ़ने जाते हो न बेटा, अल्लाह तुम्हें बड़ा दरजा दे।

पंद्रह-बीस मिनट में इक्का गोवर्धन की सराय पहुंच गया। सड़क के दाहिने हाथ एक गली थी। वहीं बुढ़िया ने इक्का रुकवा दिया, और उतर पड़ी। इक्का आगे न जा सकता था। मालूम पड़ता था, अंधोरे ने मुंह पर तारकोल पोत लिया है।

अमरकान्त ने इक्के को लौटाने के लिए कहा, तो बुढ़िया बोली-नहीं मेरे लाल, इतनी दूर आए हो, तो पल-भर मेरे घर भी बैठ लो, तुमने मेरा कलेजा ठंडा कर दिया।

गली में बड़ी दुर्गंध थी। गंदे पानी के नाले दोनों तरफ बह रहे थे। घर प्रायः सभी कच्चे थे। गरीबों का मुहल्ला था। शहरों के बाजारों और गलियों में कितना अंतर है एक फूल है-सुंदर, स्वच्छ, सुगंधामय दूसरी जड़ है-कीचड़ और दुर्गन्ध से भरी, टेढ़ी-मेढ़ी लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड़ से है-

बुढ़िया ने एक मकान के सामने खड़े होकर धीरे से पुकारा-सकीना अंदर से आवाज आई-आती हूं अम्मां इतनी देर कहां लगाई-

एक क्षण में सामने का द्वार खुला और एक बालिका हाथ में मिट्टी के तेल की कुप्पी लिए द्वार पर खड़ी हो गई। अमरकान्त बुढ़िया के पीछे खड़ा था, उस पर बालिका की निगाह न पड़ी लेकिन बुढ़िया आगे बढ़ी, तो सकीना ने अमर को देखा। तुरंत ओढ़नी में मुंह छिपाती हुई पीछे हट गई और धीरे से पूछा-यह कौन हैं, अम्मां?

बुढ़िया ने कोने में अपनी लकड़ी रख दी और बोली-लाला का लड़का है, मुझे पहुंचाने आया है। ऐसा नेक-शरीफ लड़का तो मैंने देखा ही नहीं।

उसने अब तक का सारा वृत्तांत अपने आशीर्वादों से भरी भाषा में कह सुनाया और बोली-आंगन में खाट डाल दे बेटी, जरा बुला लूं। थक गया होगा।

सकीना ने एक टूटी-सी खाट आंगन में डाल दी और उस पर एक सड़ी-सी चादर बिछाती हुई बोली-इस खटोले पर क्या बिठाओगी अम्मां, मुझे तो शर्म आती है-

बुढ़िया ने जरा कड़ी आंखों से देखकर कहा-शर्म की क्या बात है इसमें- हमारा हाल क्या इनसे छिपा है-

उसने बाहर जाकर अमरकान्त को बुलाया। द्वार एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का गटा-पुराना परदा पड़ा हुआ था। द्वार के अंदर कदम रखते ही एक आंगन था, जिसमें मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अंधोरी पड़ी हुई थी। सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और तीन और मिट्टी के दो-चार बर्तन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे। चूल्हे में आग जल रही थी और तवा रखा हुआ था।

अमर ने खाट पर बैठते हुए कहा-यह घर तो बहुत छोटा है। इसमें गुजर कैसे होती है-

बुढ़िया खाट के पास जमीन पर बैठ गई और बोली-बेटा, अब तो दो ही आदमी हैं, नहीं, इसी घर में एक पूरा कुनबा

रहता था। मेरे दो बेटे, दो बहुएं, उनके बच्चे, सब इसी घर में रहते थे। इसी में सबों के शादी-ब्याह हुए और इसी में सब मर भी गए। उस वक्त यह ऐसा गुलजार लगता था कि तुमसे क्या कहूं- अब मैं हूं और मेरी यह पोती है। और सबको अल्लाह ने बुला लिया। पकाते हैं और पड़े रहते हैं। तुम्हारे पठान के मरते ही घर में जैसे झाड़ू फिर गई। अब तो अल्लाह से यही दुआ है कि मेरे जीते-जी यह किसी भले आदमी के पाले पड़ जाए, तब अल्लाह से कहूंगी कि अब मुझे उठा लो। तुम्हारे यार-दोस्त तो बहुत होंगे बेटा, अगर शर्म की बात न समझो, तो किसी से जिक्र करना। कौन जाने तुम्हारे ही हीले से कहीं बातचीत ठीक हो जाए।

सकीना कुरता-पाजामा पहने, ओढ़नी से माथा छिपाए सायबान में खड़ी थी। बुढ़िया ने ज्योंही उसकी शादी की चर्चा छेड़ी, वह चूल्हे के पास जा बैठी और आटे को अंगुलियों से गोदने लगी। वह दिल में झुंझला रही थी कि अम्मां क्यों इनसे मेरा दुखड़ा ले बैठी- किससे कौन बात कहनी चाहिए, कौन बात नहीं, इसका इन्हें जरा भी लिहाज नहीं- जो ऐरा-गैरा आ गया, उसी से शादी का पचड़ा गाने लगीं। और सब बातें गईं, बस एक शादी रह गई।

उसे क्या मालूम कि अपनी संतान को विवाहित देखना बुढ़ापे की सबसे बड़ी अभिलाषा है।

अमरकान्त ने मन में मुसलमान मित्रों का सिंहावलोकन करते हुए कहा-मेरे मुसलमान दोस्त ज्यादा तो नहीं हैं लेकिन जो दो-एक हैं, उनसे मैं जिक्र करूंगा।

वृद्धा ने चिंतित भाव से कहा-वह लोग धानी होंगे-

'हां, सभी खुशहाल हैं।'

'तो भला धानी लोग गरीबों की बात क्यों पूछेंगे- हालांकि हमारे नबी का हुक्म है कि शादी-ब्याह में अमीर-गरीब का विचार न होना चाहिए, पर उनके हुक्म को कौन मानता है नाम के मुसलमान, नाम के हिन्दू रह गए हैं। न कहीं सच्चा मुसलमान नजर आता है, न सच्चा हिन्दू। मेरे घर का तो तुम पानी भी न पियोगे बेटा, तुम्हारी क्या खातिर करूं (सकीना से) बेटा, तुमने जो रूमाल काढ़ा है वह लाकर भैया को दिखाओ। शायद इन्हें पसंद आ जाए। और हमें अल्लाह ने किस लायक बनाया है-

सकीना रसोई से निकली और एक ताक पर से सिगरेट का एक बड़ा-सा बक्स उठा लाई और उसमें से वह रूमाल निकालकर सिर झुकाए, झिझकती हुई, बुढ़िया के पास आ, रूमाल रख, तेजी से चली गई।

अमरकान्त आंखें झुकाए हुए था पर सकीना को सामने देखकर आंखें नीची न रह सकीं। एक रमणी सामने खड़ी हो, तो उसकी ओर से मुंह फेर लेना कितनी भली बात है। सकीना का रंग सांवला था और रूप-रेखा देखते हुए वह सुंदरी न कही जा सकती थी अंग-प्रत्यंग का गठन भी कवि-वर्णित उपमाओं से मेल न खाता था पर रंग-रूप, चाल-ढाल, शील-संकोच, इन सबने मिल-जुलकर उसे आकर्षक शोभा प्रदान कर दी थी। वह बड़ी-बड़ी पलकों से आंखें छिपाए, देह चुराए, शोभा की सुगंधा और ज्योति फैलाती हुई इस तरह निकल गई, जैसे स्वप्न-चित्र एक झलक दिखाकर मिट गया हो।

अमरकान्त ने रूमाल उठा लिया और दीपक के प्रकाश में उसे देखने लगा। कितनी सफाई से बेल-बूटे बनाए गए थे। बीच में एक मोर का चित्र था। इस झोंपड़े। में इतनी सुरुचि-

चकित होकर बोला-यह तो खूबसूरत रूमाल है, माताजी सकीना काढ़ने के काम में बहुत होशियार मालूम होती है।

बुढ़िया ने गर्व से कहा-यह सभी काम जानती है भैया, न जाने कैसे सीख लिया- मुहल्ले की दो-चार लड़कियां मदरसे

पढ़ने जाती हैं। उन्हीं को काढ़ते देखकर इसने सब कुछ सीख लिया। कोई मर्द घर में होता, तो हमें कुछ काम मिल जाएँ करता। गरीबों के मुहल्ले में इन कामों की कौन कदर कर सकता है- तुम यह रुमाल लेते जाओ बेटा, एक बेकस की नजर है।

अमर ने रुमाल को जेब में रखा तो उसकी आंखें भर आईं। उसका बस होता तो इसी वक्त सौ-दो सौ रुमालों की फरमाइश कर देता। फिर भी यह बात उसके दिल में जम गई। उसने खड़े होकर कहा-मैं इस रुमाल को हमेशा तुम्हारी दुआ समझूंगा। वादा तो नहीं करता लेकिन मुझे यकीन है कि मैं अपने दोस्तों से आपको कुछ काम दिला सकूंगा।

अमरकान्त ने पहले पठानिन के लिए 'तुम' का प्रयोग किया था। चलते समय तक वह तुम आप में बदल गया था। सुरुचि, सुविचार, सद्भाव उसे यहां सब कुछ मिला। हां, उस पर विपन्नता का आवरण पड़ा हुआ था। शायद सकीना ने यह 'आप' और 'तुम' का विवेक उत्पन्न कर दिया था।

अमर उठ खड़ा हुआ। बुढ़िया आंचल फैलाकर उसे दुआएं देती रही।

आठ

अमरकान्त नौ बजते-बजते लौटा तो लाला समरकान्त ने पूछा-तुम दूकान बंद करके कहां चले गए थे- इसी तरह दूकान पर बैठा जाता है-

अमर ने सफाई दी-बुढ़िया पठानिन रुपये लेने आई थी। बहुत अंधोरा हो गया था। मैंने समझा कहीं गिर-गिरा पड़े इसलिए उसे घर तक पहुंचाने चला गया था। वह तो रुपये लेती ही न थी पर जब बहुत देर हो गई तो मैंने रोकना उचित न समझा।

'कितने रुपये दिए?'

'पांच।'

लालाजी को कुछ धैर्य हुआ।

'और कोई असामी आया था- किसी से कुछ रुपये वसूल हुए?'

'जी नहीं।'

'आश्चर्य है।'

'और तो कोई नहीं आया, हां, वही बदमाश काले खां सोने की एक चीज बेचने लाया था। मैंने लौटा दिया।'

समरकान्त की तयोरियां बदलीं-क्या चीज थी-

'सोने के कड़े थे। दस तोले बताता था।'

'तुमने तौला नहीं?'

'मैंने हाथ से छुआ तक नहीं।'

'हां, क्यों छूते, उसमें पाप लिपटा हुआ था न कितना मांगता था?'

'दो सौ।'

'झूठ बोलते हो।'

'शुरू दो सौ से किए थे, पर उतरते-उतरते तीस रुपये तक आया था।'

लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई-फिर भी तुमने लौटा दिए-

'और क्या करता- मैं तो उसे सेंट में भी न लेता। ऐसा रोजगार करना मैं पाप समझता हूं।'

समरकान्त क्रोध से विकृत होकर बोले-चुप रहो, शरमाते तो नहीं, ऊपर से बातें बनाते हो। डेढ़ सौ रुपये बैठे-बैठाए मिलते थे, वह तुमने धर्म के घमंड में खो दिए, उस पर से अकड़ते हो। जानते भी हो, धर्म है क्या चीज- साल में एक बार भी गंगा-स्नान करते हो- एक बार भी देवताओं को जल चढ़ाते हो- कभी राम का नाम लिया है जिंदगी में- कभी एकादशी या कोई दूसरा व्रत रखा है- कभी कथा-पुराण पढ़ते या सुनते हो- तुम क्या जानो धर्म किसे कहते हैं- धर्म और चीज है, रोजगार और चीज। छिः साफ डेढ़ सौ फेंक दिए।

अमरकान्त धर्म की इस व्याख्या पर मन-ही-मन हंसकर बोला-आप गंगा-स्नान, पूजा-पाठ को मुख्य धर्म समझते हैं मैं सच्चाई, सेवा और परोपकार को मुख्य धर्म समझता हूं। स्नान-ध्यान, पूजा-व्रत धर्म के साधन मात्र हैं, धर्म नहीं।

समरकान्त ने मुंह चिढ़ाकर कहा-ठीक कहते हो, बहुत ठीक अब संसार तुम्हीं को धर्म का आचार्य मानेगा। अगर तुम्हारे धर्म-मार्ग पर चलता, तो आज मैं भी लंगोटी लगाए घूमता होता, तुम भी यों महल में बैठकर मौज न करते होते। चार अक्षर अंग्रेजी पढ़ ली न, यह उसी की विभूति है लेकिन मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं, जो अंग्रेजी के विद्वान् होकर अपना धर्म-कर्म निभाए जाते हैं। साफ डेढ़ सौ पानी में डाल दिए।

अमरकान्त ने अधीर होकर कहा-आप बार-बार, उसकी चर्चा क्यों करते हैं- मैं चोरी और डाके के माल का रोजगार न करूंगा, चाहे आप खुश हों या नाराज। मुझे ऐसे रोजगार से घृणा होती है।

'तो मेरे काम में वैसी आत्मा की जरूरत नहीं। मैं ऐसी आत्मा चाहता हूं, जो अवसर देखकर, हानि-लाभ का विचार करके काम करे।'

'धर्म को मैं हानि-लाभ की तराजू पर नहीं तौल सकता।'

इस वज्र-मूर्खता की दवा, चांटे के सिवा और कुछ न थी। लालाजी खून का घूंट पीकर रह गए। अमर हर्षट-पुष्ट न होता, तो आज उसे धर्म की निंदा करने का मजा मिल जाता। बोले-बस, तुम्हीं तो संसार में एक धर्म के ठेकेदार रह गए हो, और सब तो अधर्मी हैं। वही माल जो तुमने अपने घमंड में लौटा दिया, तुम्हारे किसी दूसरे भाई ने दो-चार रुपये कम-बेश देकर ले लिया होगा। उसने तो रुपये कमाए, तुम नीबू-नोन चाटकर रह गए। डेढ़-सौ रुपये तब मिलते हैं, जब डेढ़ सौ थान कपड़ा या डेढ़ सौ बोरे चीनी बिक जाए। मुंह का कौर नहीं है। अभी कमाना नहीं पड़ा है, दूसरों की कमाई से चैन उड़ा रहे हो, तभी ऐसी बातें सूझती हैं। जब अपने सिर पड़ेगी, तब आंखें खुलेंगी।

अमर अब भी कायल न हुआ। बोला-मैं कभी यह रोजगार न करूंगा।

लालाजी को लड़के की मूर्खता पर क्रोध की जगह क्रोध-मिश्रित दया आ गई। बोले-तो फिर कौन रोजगार करोगे- कौन रोजगार है, जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो, लेन-देन, सूद-बक्रा, अनाज-कपड़ा, तेल-घी, सभी रोजगारों में दांव-घात है। जो दांव-घात समझता है, वह नगा उठाता है, जो नहीं समझता, उसका दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोजगार बता दो, जिसमें झूठ न बोलना पड़े, बेईमानी न करनी पड़े। इतने बड़े-बड़े हाकिम हैं, बताओ कौन घूस नहीं

लेता- एक सीधी-सी नकल लेने जाओ, तो एक रुपया लग जाता है। बिना तहरीर लिए थानेदार रपट तक नहीं लिखता। कौन वकील है, जो झूठे गवाह नहीं बनाता- लीडरों ही में कौन है, जो चंदे के रुपये में नोच-खसोट न करता हो- माया पर तो संसार की रचना हुई है, इससे कोई कैसे बच सकता है-

अमर ने उदासीन भाव से सिर हिलाकर कहा-अगर रोजगार का यह हाल है, तो मैं रोजगार करूंगा ही नहीं।

'तो घर-गिरस्ती कैसे चलेगी- कुएं में पानी की आमद न हो, तो कै दिन पानी निकले?'

अमरकान्त ने इस विवाद का अंत करने के इरादे से कहा-मैं भूखों मर जाऊंगा, पर आत्मा का गला न घोंटूंगा।

'तो क्या मजूरी करोगे?'

'मजूरी करने में कोई शर्म नहीं है।'

समरकान्त ने हथौड़े से काम चलते न देखकर घन चलाया-शर्म चाहे न हो पर तुम कर न सकोगे, कहो लिख दूं- मुंह से बक देना सरल है, कर दिखाना कठिन होता है। चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब चार गंडे पैसे मिलते हैं। मजूरी करेंगे एक घड़ा पानी तो अपने हाथों खींचा नहीं जाता, चार पैसे की भाजी लेनी होती है, तो नौकर लेकर चलते हैं, यह मजूरी करेंगे। अपने भाग्य को सराहो कि मैंने कमाकर रख दिया है। तुम्हारा किया कुछ न होगा। तुम्हारी इन बातों से ऐसा जी जलता है कि सारी जायदाद कृष्णार्पण कर दूं फिर देखूं तुम्हारी आत्मा किधर जाती है-

अमरकान्त पर उनकी इस चोट का भी कोई असर न हुआ-आप खुशी से अपनी जायदाद कृष्णार्पण कर दें। मेरे लिए रत्नी भर भी चिंता न करें। जिस दिन आप यह पुनीत कार्य करेंगे, उस दिन मेरा सौभाग्य-सूर्य उदय होगा। मैं इस मोह से मुक्त होकर स्वाधाीन हो जाऊंगा। जब तक मैं इस बंधन में पड़ा रहूंगा, मेरी आत्मा का विकास होगा।

समरकान्त के पास अब कोई शस्त्र न था। एक क्षण के लिए क्रोध ने उनकी व्यवहार-बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। बोले-तो क्यों इस बंधन में पड़े हो- क्यों अपनी आत्मा का विकास नहीं करते- महात्मा ही हो जाओ। कुछ करके दिखाओ तो जिस चीज की तुम कदर नहीं कर सकते, वह मैं तुम्हारे गले नहीं मढ़ना चाहता।

यह कहते हुए वह ठाकुरद्वारे में चले गए, जहां इस समय आरती का घंटा बज रहा था। अमर इस चुनौती का जवाब न दे सका। वे शब्द जो बाहर न निकल सके, उसके हृदय में फोड़े की तरह टीसने लगे-मुझ पर अपनी संपत्ति की धौंस जमाने चले हैं- चोरी का माल बेचकर, जुआरियों को चार आने रुपये ब्याज पर रुपये देकर, गरीब मजूरों और किसानों को ठगकर तो रुपये जोड़े हैं, उस पर आपको इतना अभिमान है ईश्वर न करे कि मैं उस धान का गुलाम बनूं।

वह इन्हीं उत्तिजना से भरे हुए विचारों में डूबा बैठा था कि नैना ने आकर कहा-दादा बिगड़ रहे थे, भैयाजी।

अमरकान्त के एकांत जीवन में नैना ही स्नेह और सांत्वना की वस्तु थी। अपना सुख-दुख अपनी विजय और पराजय, अपने मंसूबे और इरादे वह उसी से कहा करता था। यद्यपि सुखदा से अब उसे उतना विराग न था, अब उससे प्रेम भी हो गया था पर नैना अब भी उसमें निकटतर थी। सुखदा और नैना दोनों उसके अंतस्थल के दो कूल थे। सुखदा ऊंची, दुर्गम और विशाल थी। लहरें उसके चरणों ही तक पहुंचकर रह जाती थीं। नैना समतल, सुलभ और समीप। वायु का थोड़ा वेग पाकर भी लहरें उसके मर्मस्थल तक पहुँचती थीं।

अमर अपनी मनोव्यथा मंद मुस्कान की आड़ में छिपाता हुआ बोला-कोई नई बात नहीं थी नैना। वही पुराना पचड़ा था। तुम्हारी भाभी तो नीचे नहीं थीं-

'अभी तक तो यहीं थीं। जरा देर हुई ऊपर चली गई।'

'तो आज उधर से भी शस्त्र-प्रहार होंगे। दादा ने तो आज मुझसे साफ कह दिया, तुम अपने लिए कोई राह निकालो, और मैं भी सोचता हूं, मुझे अब कुछ-न-कुछ करना चाहिए। यह रोज-रोज की फटकार नहीं सही जाती। मैं कोई बुराई करूं, तो वह मुझे दस जूते भी जमा दें, चूं न करूंगा लेकिन अधर्म पर मुझसे न चला जाएगा।'

नैना ने इस वक्त मीठी पकौड़ियां, नमकीन पकौड़ियां और न जाने क्या-क्या पका रखे थे। उसका मन उन पदार्थों को खिलाने और खाने के आनंद में बसा हुआ था। यह धर्म-अधर्म के झगड़े उसे व्यर्थ-से जान पड़े। बोली-पहले चलकर पकौड़ियां खा लो, फिर इस विषय पर सलाह होगी।

अमर ने वितर्षणा के भाव से कहा-ब्यालू करने की मेरी इच्छा नहीं है। लात की मारी रोटियां कंठ के नीचे न उतरेंगी। दादा ने आज फैसला कर दिया।

'अब तुम्हारी यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती। आज की-सी मजेदार पकौड़ियां तुमने कभी न खाई होंगी। तुम न खाओगे, तो मैं न खाऊंगी।'

नैना की इस दलील ने उसके इंकार को कई कदम पीछे धाकेल दिया-तू मुझे बहुत दिख करती है नैना, सच कहता हूं, मुझे बिलकुल इच्छा नहीं है।

'चलकर थाल पर बैठो तो, पकौड़ियां देखते ही टूट न पड़ो, तो कहना।'

'तू जाकर खा क्यों नहीं लेती- मैं एक दिन न खाने से मर तो न जाऊंगा।'

'तो क्या मैं एक दिन न खाने से मर जाऊंगी- मैं निर्जला शिवरात्रि रखती हूं, तुमने तो कभी व्रत नहीं रखा।'

नैना के आग्रह को टालने की शक्ति अमरकान्त में न थी।

लाला समरकान्त रात को भोजन न करते थे। इसलिए भाई, भावज, बहन साथ ही खा लिया करते थे। अमर आंगन में पहुंचा, तो नैना ने भाभी को बुलाया। सुखदा ने ऊपर ही से कहा-मुझे भूख नहीं है।

मनावन का भार अमरकान्त के सिर पड़ा। वह दबे पांव ऊपर गया। जी में डर रहा था कि आज मुआमला तूल खींचेगा पर इसके साथ ही दृढ़ भी था। इस प्रश्न पर दबेगा नहीं। यह ऐसा मार्मिक विषय था, जिस पर किसी प्रकार का समझौता हो ही न सकता था।

अमरकान्त की आहट पाते ही सुखदा संभल बैठी। उसके पीले मुख पर ऐसी करुण वेदना झलक रही थी कि एक क्षण के लिए अमरकान्त चंचल हो गया।

अमरकान्त ने उसका हाथ पकड़कर कहा-चलो, भोजन कर लो। आज बहुत देर हो गई।

'भोजन पीछे करूंगी, पहले मुझे तुमसे एक बात का फैसला करना है। तुम आज फिर दादाजी से लड़ पड़े?'

'दादाजी से मैं लड़ पड़ा, या उन्हीं ने मुझे अकारण डांटना शुरू किया?'

सुखदा ने दार्शनिक निरपेक्षता के स्वर में कहा-तो उन्हें डांटने का अवसर ही क्यों देते हो- मैं मानती हूं कि उनकी नीति तुम्हें अच्छी नहीं लगती। मैं भी उसका समर्थन नहीं करती लेकिन अब इस उम्र में तुम उन्हें नए रास्ते पर नहीं चला

सकते। वह भी तो उसी रास्ते पर चल रहे हैं, जिस पर सारी दुनिया चल रही है। तुमसे जो कुछ हो सके, उनकी मदद करो जब वह न रहेंगे उस वक्त अपने आदर्शों का पालन करना। तब कोई तुम्हारा हाथ न पकड़ेगा। इस वक्त तुम्हें अपने सिध्दांतों के विरुद्ध भी कोई बात करनी पड़े, तो बुरा न मानना चाहिए। उन्हें कम-से-कम इतना संतोष तो दिला दो कि उनके पीछे तुम उनकी कमाई लुटा न दोगे। मैं आज तुम दोनों की बातें सुन रही थी। मुझे तो तुम्हारी ही ज्यादाती मालूम होती थी।

अमरकान्त उसके प्रसव-भार पर चिंता-भार न लादना चाहता था पर प्रसंग ऐसा आ पड़ा था कि वह अपने को निर्दोष ही करना आवश्यक समझता था। बोला-उन्होंने मुझसे साफ-साफ कह दिया, तम अपनी फिक्र करो। उन्हें अपना धान मुझसे ज्यादा प्यारा है।

यही कांटा था, जो अमरकान्त के हृदय में चुभ रहा था।

सुखदा के पास जवाब तैयार था-तुम्हें भी तो अपना सिध्दांत अपने बाप से ज्यादा प्यारा है- उन्हें तो मैं कुछ नहीं कहती। अब साठ बरस की उम्र में उन्हें उपदेश नहीं दिया जा सकता। कम-से-कम तुमको यह अधिकार नहीं है। तुम्हें धान काटता हो लेकिन मनस्वी, वीर पुरुषों ने सदैव लक्ष्मी की उपासना की है। संसार को पुरुषार्थियों ने ही भोगा है और हमेशा भोगेंगे। त्याग गृहस्थों के लिए नहीं है, संन्यासियों के लिए है। अगर तुम्हें त्यागव्रत लेना था तो विवाह करने की जरूरत न थी, सिर मुड़ाकर किसी साधु-संत के चले बन जाते। फिर मैं तुमसे झगड़ने न आती। अब ओखली में सिर डाल कर तुम मूसलों से नहीं बच सकते। गृहस्थी के चरखे में पड़कर बड़े-बड़ों की नीति भी स्खलित हो जाती है। कृष्ण और अर्जुन तक को एक नए तर्क की शरण लेनी पड़ी।

अमरकान्त ने इस ज्ञानोपदेश का जवाब देने की जरूरत न समझी। ऐसी दलीलों पर गंभीर विचार किया ही नहीं जा सकता था। बोला-तो तुम्हारी सलाह है कि संन्यासी हो जाऊं-

सुखदा चिढ़ गई। अपनी दलीलों का यह अनादर न सह सकी। बोली-कायरों को इसके सिवाय और सूझ ही क्या सकता है- धान कमाना आसान नहीं है। व्यवसायियों को जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वह अगर संन्यासियों को झेलनी पड़ें, तो सारा संन्यास भूल जाए। किसी भले आदमी के द्वार पर जाकर पड़े रहने के लिए बल, बुद्धि विद्या, साहस किसी की भी जरूरत नहीं। धानोपार्जन के लिए खून जलाना पड़ता है मांस सुखाना पड़ता है। सहज काम नहीं है। धान कहीं पड़ा नहीं है कि जो चाहे बटोर लाए।

अमरकान्त ने उसी विनोदी भाव से कहा-मैं तो दादा को गद्दी पर बैठे रहने के सिवाय और कुछ करते नहीं देखता। और भी जो बड़े-बड़े सेठ-साहूकार हैं उन्हें भी फूलकर कुप्पा होते ही देखा है। रक्त और मांस तो मजदूर ही जलाते हैं। जिसे देखो कंकाल बना हुआ है।

सुखदा ने कुछ जवाब न दिया। ऐसी मोटी अक्ल के आदमी से ज्यादा बकवास करना व्यर्थ था।

नैना ने पुकारा-तुम क्या करने लगे, भैया आते क्यों नहीं- पकौड़ियां ठंडी हुई जाती हैं।

सुखदा ने कहा-तुम जाकर खा क्यों नहीं लेते- बेचारी ने दिन-भर तैयारियां की हैं।

'मैं तो तभी जाऊंगा, जब तुम भी चलोगी।'

'वादा करो कि फिर दादाजी से लड़ाई न करोगे।'

अमरकान्त ने गंभीर होकर कहा-सुखदा, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मैंने इस लड़ाई से बचने के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। इन दो सालों में मुझमें कितना परिवर्तन हो गया है, कभी-कभी मुझे इस पर स्वयं आश्चर्य होता है। मुझे जिन बातों से घृणा थी, वह सब मैंने अंगीकार कर लीं लेकिन अब उस सीमा पर आ गया हूँ कि जौ भर भी आगे बढ़ा, तो ऐसे गर्त में जा गिरूंगा, जिसकी थाह नहीं है। उस सर्वनाश की ओर मुझे मत ढकेलो।

सुखदा को इस कथन में अपने ऊपर लांछन का आभास हुआ। इसे वह कैसे स्वीकार करती- बोली-इसका तो यही आशय है कि मैं तुम्हारा सर्वनाश करना चाहती हूँ। अगर अब तक मेरे व्यवहार का यही तर्क तुमने निकाला है, तो तुम्हें इससे बहुत पहले मुझे विष दे देना चाहिए था। अगर तुम समझते हो कि मैं भोग-विलास की दासी हूँ और केवल स्वार्थवश तुम्हें समझाती हूँ तो तुम मेरे साथ घोरतम अन्याय कर रहे हो। मैं तुमको बता देना चाहती हूँ, कि विलासिनी सुखदा अवसर पड़ने पर जितने कष्ट झेलने की सामर्थ्य रखती है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ईश्वर वह दिन न लाए कि मैं तुम्हारे पतन का साधन बनूँ। हाँ, जलने के लिए स्वयं चिता बनाना मुझे स्वीकार नहीं। मैं जानती हूँ कि तुम थोड़ी बुद्धि से काम लेकर अपने सिद्धांत और धर्म की रक्षा भी कर सकते हो और घर की तबाही को भी रोक सकते हो। दादाजी पढ़े-लिखे आदमी हैं, दुनिया देख चुके हैं। अगर तुम्हारे जीवन में कुछ सत्य है, तो उसका उन पर प्रभाव पड़े बगैर नहीं रह सकता। आए दिन की झोड़ से तुम उन्हें और भी कठोर बनाए देते हो। बच्चे भी मार से ज़िद्दी हो जाते हैं। बूढ़ों की प्रकृति कुछ बच्चों की-सी होती है। बच्चों की भांति उन्हें भी तुम सेवा और भक्ति से ही अपना सकते हो।

अमर ने पूछा-चोरी का माल खरीदा करूँ-

'कभी नहीं।'

'लड़ाई तो इसी बात पर हुई।'

'तुम उस आदमी से कह सकते थे-दादा आ जाएं तब लाना।'

'और अगर वह न मानता- उसे तत्काल रुपये की जरूरत थी।'

'आप'र्म भी तो कोई चीज है?'

'वह पाखंडियों का पाखंड है।'

'तो मैं तुम्हारे निर्जीव आदर्शवाद को भी पाखंडियों का पाखंड समझती हूँ।'

एक मिनट तक दोनों थके हुए योद्धाओं की भांति दम लेते रहे। तब अमरकान्त ने कहा-नैना पुकार रही है।

'मैं तो तभी चलूंगी, जब तुम वह वादा करोगे।'

अमरकान्त ने अविचल भाव से कहा-तुम्हारी खातिर से कहो वादा कर लूँ पर मैं उसे पूरा नहीं कर सकता। यही हो सकता है कि मैं घर की किसी बात से सरोकार न रखूँ।

सुखदा निश्चयात्मक रूप से बोली-यह इससे कहीं अच्छा है कि रोज घर में लड़ाई होती रहे। जब तक इस घर में हो, इस घर की हानि-लाभ का तुम्हें विचार करना पड़ेगा।

अमर ने अकड़कर कहा-मैं आज इस घर को छोड़ सकता हूँ।

सुखदा ने बम-सा फेंका-और मैं-

अमर विस्मय से सुखदा का मुंह देखने लगा।

सुखदा ने उसी स्वर में कहा-इस घर से मेरा नाता तुम्हारे आधार पर है जब तुम इस घर में न रहोगे, तो मेरे लिए यहां क्या रखा है- जहां तुम रहोगे, वहीं मैं भी रहूंगी।

अमर ने संशयात्मक स्वर में कहा-तुम अपनी माता के साथ रह सकती हो।

'माता के साथ क्यों रहूं- मैं किसी की आश्रित नहीं रह सकती। मेरा दुःख-सुख तुम्हारे साथ है। जिस तरह रखोगे, उसी तरह रहूंगी। मैं भी देखूंगी, तुम अपने सिद्धांतों के कितने पक्के हो- मैं प्रण करती हूं कि तुमसे कुछ न मांगूंगी। तुम्हें मेरे कारण जरा भी कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं खुद भी कुछ पैदा कर सकती हूं, थोड़ा मिलेगा, थोड़े में गुजर कर लेंगे, बहुत मिलेगा तो पूछना ही क्या। जब एक दिन हमें अपनी झोंपड़ी बनानी ही है तो क्यों न अभी से हाथ लगा दें। तुम कुएं से पानी लाना, मैं चौका-बर्तन कर लूंगी। जो आदमी एक महल में रहता है, वह एक कोठरी में भी रह सकता है। फिर कोई धौंस तो न जमा सकेगा।

अमरकान्त पराभूत हो गया। उसे अपने विषय में तो कोई चिंता नहीं लेकिन सुखदा के साथ वह यह अत्याचार कैसे कर सकता था-

खिसियाकर बोला-वह समय अभी नहीं आया है, सुखदा।

'क्यों झूठ बोलते हो तुम्हारे मन में यही भाव है और इससे बड़ा अन्याय तुम मेरे साथ नहीं कर सकते कष्ट सहने में, या सिद्धांत की रक्षा के लिए स्त्रियां कभी पुरुषों से पीछे नहीं रहीं। तुम मुझे मजबूर कर रहे हो कि और कुछ नहीं तो लांछन से बचने के लिए मैं दादाजी से अलग रहने की आज्ञा मांगू। बोलो?'

अमर लज्जित होकर बोला-मुझे क्षमा करो सुखदा मैं वादा करता हूं कि दादाजी जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा।

'इसलिए कि तुम्हें मेरे विषय में संदेह है?'

'नहीं, केवल इसलिए कि मुझमें अभी उतना बल नहीं है।'

इसी समय नैना आकर दोनों को पकौड़ियां खिलाने के लिए घसीट ले गई। सुखदा प्रसन्न थी। उसने आज बहुत बड़ी विजय पाई थी। अमरकान्त झेंपा हुआ था। उसके आदर्श और धर्म की आज परीक्षा हो गई थी और उसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान हो गया था। ऊंट पहाड़ के नीचे आकर अपनी ऊंचाई देख चुका था।

नौ

जीवन में कुछ सार है, अमरकान्त को इसका अनुभव हो रहा है। वह एक शब्द भी मुंह से ऐसा नहीं निकालना चाहता, जिससे सुखदा को दुख हो क्योंकि वह गर्भवती है। उसकी इच्छा के विरुद्ध वह छोटी-से-छोटी बात भी नहीं कहना चाहता। वह गर्भवती है। उसे अच्छी-अच्छी किताबें पढ़कर सुनाई जाती हैं रामायण, महाभारत और गीता से अब अमर को विशेष प्रेम है क्योंकि सुखदा गर्भवती है। बालक के संस्कारों का सदैव ध्यान बना रहता है। सुखदा को प्रसन्न रखने की निरंतर चेष्टा की जाती है। उसे थिएटर, सिनेमा दिखाने में अब अमर को संकोच नहीं होता। कभी फूलों के गजरे आते हैं, कभी कोई मनोरंजन की वस्तु। सुबह-शाम वह दूकान पर भी बैठता है। सभाओं की ओर उसकी रुचि नहीं है। वह पुत्र का पिता बनने जा रहा है। इसकी कल्पना से उसमें ऐसा उत्साह भर जाता है कि कभी-कभी एकांत में नतमस्तक होकर कृष्ण के चित्र के सामने सिर झुका लेता है। सुखदा तप कर रही है। अमर अपने को नई जिम्मेदारियों के लिए

तैयार कर रहा है। अब तक वह समतल भूमि पर था, बहुत संभलकर चलने की उतनी जरूरत न थी। अब वह ऊंचाई पर जा पहुंचा है। वहां बहुत संभलकर पांव रखना पड़ता है।

लाला समरकान्त भी आजकल बहुत खुश नजर आते हैं। बीसों ही बार अंदर आकर सुखदा से पूछते हैं, किसी चीज की जरूरत तो नहीं है- अमर पर उनकी विशेष कृपा-दृष्टि हो गई है। उसके आदर्शवाद को वह उतना बुरा नहीं समझते। एक दिन काले खां को उन्होंने दूकान से खड़े-खड़े निकाल दिया। असामियों पर वह उतना नहीं बिगड़ते, उतनी मालिशें नहीं करते। उनका भविष्य उज्ज्वल हो गया है। एक दिन उनकी रेणुका से बातें हो रही थीं। अमरकान्त की निष्ठा की उन्होंने दिल खोलकर प्रशंसा की।

रेणुका उतनी प्रसन्न न थीं। प्रसव के कष्टों को याद करके वह भयभीत हो जाती थीं। बोलीं-लालाजी, मैं तो भगवान् से यही मनाती हूं कि जब हंसाया है, तो बीच में रुलाना मत। पहलौंठी में बड़ा संकट रहता है। स्त्री का दूसरा जन्म होता है।

समरकान्त को ऐसी कोई शंका न थी। बोले-मैंने तो बालक का नाम सोच लिया है। उसका नाम होगा-रेणुकान्त।

रेणुका आशंकित होकर बोली-अभी नाम-वाम न रखिए, लालाजी इस संकट से उबर हो जाए, तो नाम सोच लिया जाएगा। मैं सोचती हूं, दुर्गा-पाठ बैठा दीजिए। इस मुहल्ले में एक दाई रहती है, उसे अभी से रख लिया जाए, तो अच्छा हो। बिटिया अभी बहुत-सी बातें नहीं समझती। दाई उसे संभालती रहेगी।

लालाजी ने इस प्रस्ताव को हर्ष से स्वीकार कर लिया। यहां से जब वह घर लौटे तो देखा-दूकान पर दो गोरे और एक मेम बैठे हुए हैं और अमरकान्त उनसे बातें कर रहा है। कभी-कभी नीचे दर्जे के गोरे यहां अपनी घड़ियां या और कोई चीज बेचने के लिए आ जाते थे। लालाजी उन्हें खूब ठगते थे। वह जानते थे कि ये लोग बदनामी के भय से किसी दूसरी दुकान पर न जाएंगे। उन्होंने जाते-ही-जाते अमरकान्त को हटा दिया और खुद सौदा पटाने लगे। अमरकान्त स्पष्टवादी था और यह स्पष्टवादिता का अवसर न था। मेम साहब को सलाम करके पूछा-कहिए मेम साहब, क्या हुक्म है-

तीनों शराब के नशे में चूर थे। मेम साहब ने सोने की एक जंजीर निकालकर कहा -सेठजी, हम इसको बेचना चाहता है। बाबा बहुत बीमार है। उसका दवाई में बहुत खर्च हो गया।

समरकान्त ने जंजीर लेकर देखा और हाथ में तौलते हुए बोले-इसका सोना तो अच्छा नहीं है, मेम साहब आपने कहां बनवाया था-

मेम हंसकर बोली-ओ तुम बराबर यही बात कहता है। सोना बहुत अच्छा है। अंग्रेजी दूकान का बना हुआ है। आप इसको ले लें।

समरकान्त ने अनिच्छा का भाव दिखाते हुए कहा-बड़ी-बड़ी दूकानें ही तो ग्राहकों को उलटे छुरे से मूंड़ती हैं। जो कपड़ा यहां बाजार में छह आने गज मिलेगा, वही अंग्रेजी दूकानों पर बारह आने गज से नीचे न मिलेगा। मैं तो दस रुपये तोले से बेशी नहीं दे सकता।

'और कुछ नहीं देगा?'

'कुछ और नहीं। यह भी आपकी खातिर है।'

यह गोरे उस श्रेणी के थे, जो अपनी आत्मा को शराब और जुए के हाथों बेच देते हैं, बे-टिकट गस्ट क्लास में सफर

करते हैं, होटल वालों को धोखा देकर उड़ जाते हैं और जब कुछ बस नहीं चलता, तो बिगड़े हुए शरीफ बनकर भीख मांगते हैं। तीनों ने आपस में सलाह की और जंजीर बेच डाली। रुपये लेकर दूकान से उतरे और तांगे पर बैठे ही थे कि एक भिखारिन तांगे के पास आकर खड़ी हो गई। वे तीनों रुपये पाने की खुशी में भूले हुए थे कि सहसा उस भिखारिन ने छुरी निकालकर एक गोरे पर वार किया। छुरी उसके मुंह पर आ रही थी। उसने घबराकर मुंह पीछे हटाया तो छाती में चुभ गई। वह तो तांगे पर ही हाय-हाय करने लगा। शेष दोनों गोरे तांगे से उतर पड़े और दूकान पर आकर प्राणरक्षा माफना चाहते थे कि भिखारिन ने दूसरे गोरे पर वार कर दिया। छुरी उसकी पसली में पहुंच गई। दूकान पर चढ़ने न पाया था, धाड़ाम से गिर पड़ा। भिखारिन लपककर दूकान पर चढ़ गई और मेम पर झपटी कि अमरकान्त हां-हां करके उसकी छुरी छीन लेने को बढ़ा। भिखारिन ने उसे देखकर छुरी फेंक दी और दूकान के नीचे कूदकर खड़ी हो गई। सारे बाजार में हलचल मच गई-एक गोरे ने कई आदमियों को मार डाला है, लाला समरकान्त मार डाले गए, अमरकान्त को भी चोट आई है। ऐसी दशा में किसे अपनी जान भारी थी, जो वहां आता। लोग दूकानें बंद करके भागने लगे।

दोनों गोरे जमीन पर पड़े तड़प रहे थे, ऊपर मेम सहमी हुई खड़ी थी और लाला समरकान्त अमरकान्त का हाथ पकड़कर अंदर घसीट ले जाने की चेष्टा कर रहे थे। भिखारिन भी सिर झुकाए जड़वत् खड़ी थी-ऐसी भोली-भाली जैसे कुछ किया नहीं है।

वह भाग सकती थी, कोई उसका पीछा करने का साहस न करता पर भागी नहीं। वह आत्मघात कर सकती थी। उसकी छुरी अब भी जमीन पर पड़ी हुई थी पर उसने आत्मघात भी न किया। वह तो इस तरह खड़ी थी, मानो उसे यह सारा दृश्य देखकर विस्मय हो रहा हो।

सामने के कई दूकानदार जमा हो गए। पुलिस के दो जवान भी आ पहुँचे। चारों तरफ से आवाज आने लगी-यही औरत है यही औरत है पुलिस वालों ने उसे पकड़ लिया।

दस मिनट में सारा शहर और सारे अधिकारी वहां आकर जमा हो गए। सब तरफ लाल पगड़ियां दीख पड़ती थीं। सिविल सर्जन ने आकर आहतों को उठवाया और अस्पताल ले चले। इधर तहकीकात होने लगी। भिखारिन ने अपना अपराध स्वीकार किया।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने पूछा-तेरी इन आदमियों से कोई अदावत थी-

भिखारिन ने कोई जवाब न दिया।

सैकड़ों आवाजें आई-बोलती क्यों नहीं हत्यारिन।

भिखारिन ने दृढ़ता से कहा-मैं हत्यारिन नहीं हूँ।

'इन साहबों को तूने नहीं मारा?'

'हां, मैंने मारा है।'

'तो तू हत्यारिन कैसे नहीं है?'

'मैं हत्यारिन नहीं हूँ। आज से छः महीने पहले ऐसे ही तीन आदमियों ने मेरी आबरू बिगाड़ी थी। मैं फिर घर नहीं गई। किसी को अपना मुंह नहीं दिखाया। मुझे होश नहीं कि मैं कहां-कहां फिरी, कैसे रही, क्या-क्या किया- इस वक्त भी मुझे होश तब आया, जब मैं इन दोनों गोरों को घायल कर चुकी थी। तब मुझे मालूम हुआ कि मैंने क्या किया- मैं बहुत

गरीब हूं। मैं नहीं कह सकती, मुझे छुरी किसने दी, कहां से मिली और मुझमें इतनी हिम्मत कहां से आई- मैं यह इसलिए नहीं कह रही हूं कि मैं फांसी से डरती हूं। मैं तो भगवान् से मनाती हूं कि जितनी जल्द हो सके, मुझे संसार से उठा लो। जब आबरू लुट गई, तो जीकर क्या करूंगी?’

इस कथन ने जनता की मनोवृत्ति बदल दी। पुलिस ने जिन-जिन लोगों के बयान लिए, सबने यही कहा-यह पगली है। इधर-उधर मारी-मारी फिरती थी। खाने को दिया जाता था, तो कुर्तियों के आगे डाल देती थी। पैसे दिए जाते थे, तो फेंक देती थी।

एक तांगे वाले ने कहा-यह बीच सड़क पर बैठी हुई थी। कितनी ही घंटी बजाई, पर रास्ते से हटी नहीं। मजबूर होकर पटरी से तांगा निकाल लाया।

एक पान वाले ने कहा-एक दिन मेरी दूकान पर आकर खड़ी हो गई। मैंने एक बीड़ा दिया। उसे जमीन पर डालकर पैरों से कुचलने लगी, फिर गाती हुई चली गई।

अमरकान्त का बयान भी हुआ। लालाजी तो चाहते थे कि वह इस झंझट में न पड़े पर अमरकान्त ऐसा उत्तोजित हो रहा था कि उन्हें दुबारा कुछ कहने का हौसला न हुआ। अमर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। रंग को चोखा करने के लिए दो-चार बातें अपनी तरफ से जोड़ दीं।

पुलिस के अफसर ने पूछा-तुम कह सकते हो, यह औरत पागल है-

अमरकान्त बोला-जी हां, बिलकुल पागल। बीसियों ही बार उसे अकेले हंसते या रोते देखा है। कोई कुछ पूछता, तो भाग जाती थी।

यह सब झूठ था। उस दिन के बाद आज यह औरत यहां पहली बार उसे नजर आई थी। संभव है उसने कभी, इधर-उधर भी देखा हो पर वह उसे पहचान न सका था।

जब पुलिस पगली को लेकर चली तो दो हजार आदमी थाने तक उसके साथ गए। अब वह जनता की दृष्टि में साधारण स्त्री न थी। देवी के पद पर पहुंच गई थी। किसी दैवी शक्ति के बगैर उसमें इतना साहस कहां से आ जाता रात-भर शहर के अन्य भागों में आ-आकर लोग घटना-स्थल का मुआयना करते रहे। दो-एक आदमी उस कांड की व्याख्या करने में हार्दिक आनंद प्राप्त कर रहे थे। यों आकर तांगे के पास खड़ी हो गई, यों छुरी निकाली, यों झपटी, यों दोनों दूकान पर चढ़े, यों दूसरे गोरे पर टूटी। भैया अमरकान्त सामने न जाएं, तो मेम का काम भी तमाम कर देती। उस समय उसकी आंखों से लाल अंगारे निकल रहे थे। मुख पर ऐसा तेज था, मानो दीपक हो।

अमरकान्त अंदर गया तो देखा, नैना भावज का हाथ पकड़े सहमी खड़ी है और सुखदा राजसी करुणा से आंदोलित सजल नेत्र चारपाई पर बैठी हुई है। अमर को देखते ही वह खड़ी हो गई और बोली-यह वही औरत थी न-

‘हां, वही तो मालूम होती है।’

‘तो अब यह फांसी पा जाएगी?’

‘शायद बच जाए, पर आशा कम है।’

‘अगर इसको फांसी हो गई तो मैं समझूंगी, संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने

उस पर ऐसा अत्याचार किया, उन्हें यही दंड मिलना चाहिए था। मैं अगर न्याय के पद पर होती, तो उसे बेदाग छोड़ देती। ऐसी देवी की तो प्रतिमा बनाकर पूजना चाहिए। उसने अपनी सारी बहनों का मुख उज्ज्वल कर दिया।'

अमरकान्त ने कहा-लेकिन यह तो कोई न्याय नहीं कि काम कोई करे सजा कोई पाए।

सुखदा ने उग्र भाव से कहा-वे सब एक हैं। जिस जाति में ऐसे दुष्ट हों उस जाति का पतन हो गया है। समाज में एक आदमी कोई बुराई करता है, तो सारा समाज बदनाम हो जाता है और उसका दंड सारे समाज को मिलना चाहिए। एक गोरी औरत को सरहद का कोई आदमी उठा ले गया था। सरकार ने उसका बदला लेने के लिए सरहद पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी थी। अपराधी कौन है, इसे पूछा भी नहीं। उसकी निगाह में सारा सूबा अपराधी था। इस भिखारिन का कोई रक्षक न था। उसने अपनी आबरू का बदला खुद लिया। तुम जाकर वकीलों से सलाह लो, फांसी न होने पाए चाहे कितने ही रुपये खर्च हो जाएं। मैं तो कहती हूँ, वकीलों को इस मुकदमे की पैरवी मुर्ति करनी चाहिए। ऐसे मुआमले में भी कोई वकील मेहनताना मांगे, तो मैं समझूंगी वह मनुष्य नहीं। तुम अपनी सभा में आज जलसा करके चंदा लेना शुरू कर दो। मैं इस दशा में भी इसी शहर से हजारों रुपये जमा कर सकती हूँ। ऐसी कौन नारी है, जो उसके लिए नहीं कर दे।

अमरकान्त ने उसे शांत करने के इरादे से कहा-जो कुछ तुम चाहती हो वह सब होगा। नतीजा कुछ भी हो पर हम अपनी तरफ से कोई बात उठा न रखेंगे। मैं जरा प्रो शान्तिकुमार के पास जाता हूँ। तुम जाकर आराम से लेटो।

'मैं भी अम्मां के पास जाऊंगी। तुम मुझे उधर छोड़कर चले जाना।'

अमर ने आग्रहपूर्वक कहा-तुम चलकर शांति से लेटो, मैं अम्मां से मिलता चला जाऊंगा।

सुखदा ने चिढ़कर कहा-ऐसी दशा में जो शांति से लेटे वह मृतक है। इस देवी के लिए तो मुझे प्राण भी देने पड़ें, तो खुशी से दूं। अम्मां से मैं जो कहूंगी, वह तुम नहीं कह सकते। नारी के लिए नारी के हृदय में जो तड़प होगी, वह पुरुषों के हृदय में नहीं हो सकती। मैं अम्मां से इस मुकदमे के लिए पांच हजार से कम न लूंगी। मुझे उनका धान न चाहिए। चंदा मिले तो वाह-वाह, नहीं तो उन्हें खुद निकल आना चाहिए। तांगा बुलवा लो।

अमरकान्त को आज ज्ञात हुआ, विलासिनी के हृदय में कितनी वेदना, कितना स्वजाति-प्रेम, कितना उत्सर्ग है।

तांगा आया और दोनों रेणुकादेवी से मिलने चले।

दस

तीन महीने तक सारे शहर में हलचल रही। रोज आदमी सब काम-धांधो छोड़कर कचहरी जाते। भिखारिन को एक नजर देख लेने की अभिलाषा सभी को खींच ले जाती। महिलाओं की भी खासी संख्या हो जाती थी। भिखारिन ज्योंही लारी से उतरती, 'जय-जय' की गगन-भेदी ध्वनि और पुष्प-वर्षा होने लगती। रेणुका और सुखदा तो कचहरी के उठने तक वहीं रहतीं।

जिला मैजिस्ट्रेट ने मुकदमे को जजी में भेज दिया और रोज पेशियां होने लगीं। पंच नियुक्त हुए। इधर सफाई के वकीलों की एक फौज तैयार की गई। मुकदमे को सबूत की जरूरत न थी। अपराधिनी ने अपराध स्वीकार ही कर लिया था। बस, यही निश्चय करना था कि जिस वक्त उसने हत्या की उस वक्त होश में थी या नहीं। शहादतें कहती थीं, वह होश में न थी। डॉक्टर कहता था, उसमें अस्थिरचित्त होने के कोई चिह्न नहीं मिलते। डॉक्टर साहब बंगाली थे। जिस दिन वह बयान देकर निकले, उन्हें इतनी धिक्कारें मिलीं कि बेचारे को घर पहुंचना मुश्किल हो गया। ऐसे अवसरों पर

जनता की इच्छा के विरुद्ध किसी ने चूं किया और उसे धिक्कार मिली। जनता आत्म-निश्चय के लिए कोई अवसर नहीं देती। उसका शासन किसी तरह की नमी नहीं करता।

रेणुका नगर की रानी बनी हुई थीं। मुकदमे की पैरवी का सारा भार उनके ऊपर था। शान्तिकुमार और अमरकान्त उनकी दाहिनी और बाईं भुजाएं थे। लोग आ-आकर खुद चंदा दे जाते। यहां तक कि लाला समरकान्त भी गुप्त रूप से सहायता कर रहे थे।

एक दिन अमरकान्त ने पठानिन को कचहरी में देखा। सकीना भी चादर ओढ़े उसके साथ थी।

अमरकान्त ने पूछा-बैठने को कुछ लाऊं, माताजी- आज आपसे भी न रहा गया-

पठानिन बोली-मैं तो रोज आती हूं बेटा, तुमने मुझे न देखा होगा। यह लड़की मानती ही नहीं।

अमरकान्त को रुमाल की याद आ गई, और वह अनुरोध भी याद आया, जो बुढ़िया ने उससे किया था पर इस हलचल में वह कॉलेज तक तो जा न पाता था, उन बातों का कहां से खयाल रखता।

बुढ़िया ने पूछा-मुकदमे में क्या होगा बेटा- वह औरत छूटेगी कि सजा हो जायगी-

सकीना उसके और समीप आ गई।

अमर ने कहा-कुछ कह नहीं सकता, माता। छूटने की कोई उम्मीद नहीं मालूम होती मगर हम प्रीवी-कौंसिल तक जाएंगे।

पठानिन बोली-ऐसे मामले में भी जज सजा कर दे, तो अंधेर है।

अमरकान्त ने आवेश में कहा-उसे सजा मिले चाहे रिहाई हो, पर उसने दिखा दिया कि भारत की दरिद्र औरतें भी अपनी आबरू की कैसे रक्षा कर सकती हैं।

सकीना ने पूछा तो अमर से, पर दादी की तरफ मुंह करके-हम दर्शन कर सकेंगे अम्मां-

अमर ने तत्परता से कहा-हां, दर्शन करने में क्या है- चलो पठानिन, मैं तुम्हें अपने घर की स्त्रियों के साथ बैठा दूं। वहां तुम उन लोगों से बातें भी कर सकोगी।

पठानिन बोली-हां, बेटा, पहले ही दिन से यह लड़की मेरी जान खा रही है। तुमसे मुलाकात ही न होती थी कि पूछूं। कुछ रुमाल बनाए थे। उनसे दो रुपये मिले। वह दोनों रुपये तभी से संचित कर रखे हुए हैं। चंदा देगी। न हो तो तुम्हीं ले लो बेटा, औरतों को दो रुपये देते हुए शर्म आएगी।

अमरकान्त गरीबों का त्याग देखकर भीतर-ही-भीतर लज्जित हो गया। वह अपने को कुछ समझने लगा था। जिधर निकल जाता, जनता उसका सम्मान करती लेकिन इन फाकेमस्ती का यह उत्साह देखकर उसकी आंखें खुल गईं। बोला-चंदे की तो अब कोई जरूरत नहीं है, अम्मां रुपये की कमी नहीं है। तुम इसे खर्च कर डालना। हां, चलो मैं उन लोगों से तुम्हारी मुलाकात करा दूं।

सकीना का उत्साह ठंडा पड़ गया। सिर झुकाकर बोली-जहां गरीबों के रुपये नहीं पूछे जाते, वहां गरीबों को कौन पूछेगा- वहां जाकर क्या करोगी, अम्मां आएगी तो यहीं से देख लेना।

अमरकान्त झेंपता हुआ बोला-नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है अम्मां, वहां तो एक पैसा भी हाथ फैलाकर लिया जाता

है। गरीब-अमीर की कोई बात नहीं है। मैं खुद गरीब हूँ। मैंने तो सिर्फ इस खयाल से कहा था कि तुम्हें तकलीफ होगी। दोनों अमरकान्त के साथ चलीं, तो रास्ते में पठानिन ने धीरे से कहा-मैंने उस दिन तुमसे एक बात कही थी, बेटा शायद तुम भूल गए।

अमरकान्त ने शरमाते हुए कहा-नहीं-नहीं, मुझे याद है। जरा आजकल इसी झंझट में पड़ा रहा। ज्योंही इधर से फुरसत मिली, मैं अपने दोस्तों से जिक्र करूँगा।

अमरकान्त दोनों स्त्रियों का रेणुका से परिचय कराके बाहर निकला, तो प्रो शान्ति कुमार से मुठभेड़ हुई। प्रोफेसर ने पूछा-तुम कहाँ इधर-उधर घूम रहे हो जी- किसी वकील का पता नहीं। मुकदमा पेश होने वाला है। आज मुलजिमा का बयान होगा, इन वकीलों से खुदा समझे। जरा-सा इजलास पर खड़े क्या हो जाते हैं, गोया सारे संसार को उनकी उपासना करनी चाहिए। इससे कहीं अच्छा था कि दो-एक वकीलों को मेहनताने पर रख लिया जाता। मुर्ति का काम बेगार समझा जाता है। इतनी बेदिली से पैरवी की जा रही है कि मेरा खून खौलने लगता है। नाम सब चाहते हैं, काम कोई नहीं करना चाहता। अगर अच्छी जिरह होती, तो पुलिस के सारे गवाह उखड़ जाते। पर यह कौन करता- जानते हैं कि आज मुलजिमा का बयान होगा, फिर भी किसी को फिक्र नहीं।

अमरकान्त ने कहा-मैं एक-एक को इत्तिला दे चुका। कोई न आए तो मैं क्या करूँ-

शान्तिकुमार-मुकदमा खतम हो जाए, तो एक-एक की खबर लूँगा।

इतने में लारी आती दिखाई दी। अमरकान्त वकीलों को इत्ताला करने दौड़ा। दर्शक चारों ओर से दौड़-दौड़कर अदालत के कमरे में आ पहुँचे। भिखारिन लारी से उतरी और कटघरे के सामने आकर खड़ी हो गई। उसके आते ही हजारों की आंखें उसकी ओर उठ गईं पर उन आंखों में एक भी ऐसी न थी, जिसमें श्रद्धा न भरी हो। उसके पीले, मुरझाए हुए मुख पर आत्मगौरव की ऐसी कांति थी जो कुत्सित दृष्टि के उठने के पहले ही निराश और पराभूत करके उसमें श्रद्धा को आरोपित कर देती थी।

जज साहब सांवले रंग के नाटे, चकले, वृहदाकार मनुष्य थे। उनकी लंबी नाक और छोटी-छोटी आंखें अनायास ही मुस्कराती मालूम देती थीं। पहले यह महाशय राष्ट्र के उत्साही सेवक थे और कांग्रेस के किसी प्रांतीय जलसे के सभापति हो चुके थे पर इधर तीन साल से वह जज हो गए थे। अतएव अब राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक् रहते थे, पर जानने वाले जानते थे कि वह अब भी पत्रों में नाम बदलकर अपने राष्ट्रीय विचारों का प्रतिपादन करते रहते हैं। उनके विषय में कोई शत्रु भी यह कहने का साहस नहीं कर सकता था कि वह किसी दबाव या भय से न्याय-पथ से जौ-भर विचलित हो सकते हैं। उनकी यही न्यायपरता इस समय भिखारिन की रिहाई में बाधाक हो रही थी।

जज साहब ने पूछा-तुम्हारा नाम-

भिखारिन ने कहा-भिखारिन।

'तुम्हारे पिता का नाम?'

'पिता का नाम बताकर उन्हें कलंकित नहीं करना चाहती।'

'घर कहाँ है?'

भिखारिन ने दुःखी कंठ से कहा-पूछकर क्या कीजिएगा- आपको इससे क्या काम है-

'तुम्हारे ऊपर यह अभियोग है कि तुमने तीन तारीख को दो अंग्रेजों को छुरी से ऐसा जख्मी किया कि दोनों उसी दिन मर गए। तुम्हें यह अपराध स्वीकार है?'

भिखारिन ने निशंक भाव से कहा-आप उसे अपराध कहते हैं मैं अपराध नहीं समझती।

'तुम मारना स्वीकार करती हो?'

'गवाहों ने झूठी गवाही थोड़े ही दी होगी।'

'तुम्हें अपने विषय में कुछ कहना है?'

भिखारिन ने स्पष्ट स्वर में कहा-मुझे कुछ नहीं कहना है। अपने प्राणों को बचाने के लिए मैं कोई सफाई नहीं देना चाहती। मैं तो यह सोचकर प्रसन्न हूँ कि जल्द जीवन का अंत हो जाएगा। मैं दीन, अबला हूँ। मुझे इतना ही याद है कि कई महीने पहले मेरा सर्वस्व लूट लिया गया और उसके लुट जाने के बाद मेरा जीना वृथा है। मैं उसी दिन मर चुकी। मैं आपके सामने खड़ी बोल रही हूँ, पर इस देह में आत्मा नहीं है। उसे मैं जिंदा नहीं कहती, जो किसी को अपना मुंह न दिखा सके। मेरे इतने भाई-बहन व्यर्थ मेरे लिए इतनी दौड़-धूप और खर्च-वर्च कर रहे हैं। कलंकित होकर जीने से मर जाना कहीं अच्छा है। मैं न्याय नहीं मांगती, दया नहीं मांगती, मैं केवल प्राण-दंड मांगती हूँ। हां, अपने भाई-बहनों से इतनी विनती करूंगी कि मेरे मरने के बाद मेरी काया का निरादर न करना, उसे छूने से घिन मत करना, भूल जाना कि वह किसी अभागिन पतिता की लाश है। जीते-जी मुझे जो चीज नहीं मिल सकती, वह मुझे मरने के पीछे दे देना। मैं साफ कहती हूँ कि मुझे अपने किए पर रंज नहीं है, पछतावा नहीं है। ईश्वर न करे कि मेरी किसी बहन की ऐसी गति हो लेकिन हो जाए तो उसके लिए इसके सिवाय कोई राह नहीं है। आप सोचते होंगे, अब यह मरने के लिए इतनी उतावली है, तो अब तक जीती क्यों रही- इसका कारण मैं आपसे क्या बताऊँ- जब मुझे होश आया और अपने सामने दो आदमियों को तड़पते देखा, तो मैं डर गई। मुझे कुछ सूझ ही न पड़ा कि मुझे क्या करना चाहिए। उसके बाद भाइयों-बहनों की सज्जनता ने मुझे मोह के बंधन में जकड़ दिया, और अब तक मैं अपने को इस धाँसे में डाले हुए हूँ कि शायद मेरे मुख से कालिख छूट गई और अब मुझे भी और बहनों की तरह विश्वास और सम्मान मिलेगा लेकिन मन की मिठाई से किसी का पेट भरा है- आज अगर सरकार मुझे छोड़ भी दे, मेरे भाई-बहनों मेरे गले में फूलों की माला भी डाल दें, मुझ पर अशर्फियों की बरखा भी की जाए, तो क्या यहां से मैं अपने घर जाऊंगी- मैं विवाहिता हूँ। मेरा एक छोटा-सा बच्चा है। क्या मैं उस बच्चे को अपना कह सकती हूँ- क्या अपने पति को अपना कह सकती हूँ- कभी नहीं। बच्चा मुझे देखकर मेरी गोद के लिए हाथ फैलाएगा पर मैं उसके हाथों को नीचा कर दूंगी और आंखों में आंसू भरे मुंह फेरकर चली जाऊंगी। पति मुझे क्षमा भी कर दे। मैंने उसके साथ कोई विश्वासघात नहीं किया है। मेरा मन अब भी उसके चरणों से लिपट जाना चाहता है लेकिन मैं उसके सामने ताक नहीं सकती। वह मुझे खींच भी ले जाए, तब भी मैं उस घर में पांव न रखूंगी। इस विचार से मैं अपने मन को संतोष नहीं दे सकती कि मेरे मन में पाप न था। इस तरह तो अपने मन को वह समझाए, जिसे जीने की लालसा हो। मेरे हृदय से यह बात नहीं जा सकती कि तू अपवित्र है, अछूत है। कोई कुछ कहे, कोई कुछ सुने। आदमी को जीवन क्यों प्यारा होता है- इसलिए नहीं कि वह सुख भोगता है। जो सदा दुख भोगा करते हैं और रोटियों को तरसते हैं, उन्हें जीवन कुछ कम प्यारा नहीं होता। हमें जीवन इसलिए प्यारा होता है कि हमें अपनों का प्रेम और दूसरों का आदर मिलता है। जब इन दो में से एक के मिलने की भी आशा नहीं तो जीना वृथा है। अपने मुझसे

अब भी प्रेम करें लेकिन वह दया होगी, प्रेम नहीं। दूसरे अब भी मेरा आदर करें लेकिन वह भी दया होगी, आदर नहीं। वह आदर और प्रेम अब मुझे मरकर ही मिल सकता है। जीवन में तो मेरे लिए निंदा, और बहिष्कार के सिवा कुछ नहीं है। यहां मेरी जितनी बहनें और भाई हैं, उन सबसे मैं यही भिक्षा मांगती हूं कि उस समाज के उबर के लिए भगवान् से प्रार्थना करें, जिसमें ऐसे नर-पिशाच उत्पन्न होते हैं।

भिखारिन का बयान समाप्त हो गया। अदालत के उस बड़े कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल दो-चार महिलाओं की सिसकियों की आवाज सुनाई देती थी। महिलाओं के मुख गर्व से चमक रहे थे। पुरुषों के मुख लज्जा से मलिन थे। अमरकान्त सोच रहा था, गोरों को ऐसा दुस्साहस इसीलिए तो हुआ कि वह अपने को इस देश का राजा समझते हैं। शान्तिकुमार ने मन-ही-मन एक व्याख्यान की रचना कर डाली थी, जिसका विषय था-स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार। सुखदा सोच रही थी-यह छूट जाती, तो मैं इसे अपने घर में रखती और इसकी सेवा करती। रेणुका उसके नाम पर एक स्त्री-औषधालय बनवाने की कल्पना कर रही थी।

सुखदा के समीप ही जज साहब की धर्मपत्नी बैठी हुई थीं। वह बड़ी देर से इस मुकदमे के संबंधों में कुछ बातचीत करने को उत्सुक हो रही थीं, पर अपने समीप बैठी हुई स्त्रियों की अविश्वास-पूर्ण दृष्टि देखकर-जिससे वे उन्हें देख रही थीं, उन्हें मुंह खोलने का साहस न होता था।

अंत में उनसे न रहा गया। सुखदा से बोलीं-यह स्त्री बिलकुल निरपराध है।

सुखदा ने कटाक्ष किया-जब जज साहब भी ऐसा समझें।

'मैं तो आज उनसे साफ-साफ कह दूंगी कि अगर तुमने इस औरत को सजा दी, तो मैं समझूंगी, तुमने अपने प्रभुओं का मुंह देखा।'

सहसा जज साहब ने खड़े होकर पंचों को थोड़े शब्दों में इस मुकदमे में अपनी सम्मति देने का आदेश दिया और खुद कुछ कागजों को उलटने-पलटने लगे। पंच लोग पीछे वाले कमरे में जाकर थोड़ी देर बातें करते रहे और लौटकर अपनी सम्मति दे दी। उनके विचार में अभियुक्त निरपराध थी। जज साहब जरा-सा मुस्कराए और कल फैसला सुनाने का वादा करके उठ खड़े हुए।

ग्यारह

सारे शहर में कल के लिए दोनों तरह की तैयारियां होने लगीं-हाय-हाय की भी और वाह-वाह की भी। काली झंडियां भी बनीं और फलों की डालियां भी जमा की गईं, पर आशावादी कम थे, निराशावादी ज्यादा। गोरों का खून हुआ है। जज ऐसे मामले में भला क्या इंसाफ करेगा, क्या बचा हुआ है- शान्तिकुमार और सलीम तो खुल्लमखुल्ला कहते फिरते थे कि जज ने फांसी की सजा दे दी। कोई खबर लाता था-फौज की एक पूरी रेजीमेंट कल अदालत में तलब की गई है। कोई फौज तक न जाकर, सशस्त्र पुलिस तक ही रह जाता था। अमरकान्त को फौज के बुलाए जाने का विश्वास था।

दस बजे रात को अमरकान्त सलीम के घर पहुंचा। अभी यहां घंटे ही भर पहले आया था। सलीम ने चिंतित होकर पूछा-कैसे लौट पड़े भाई, क्या कोई नई बात हो गई-

अमर ने कहा-एक बात सूझ गई। मैंने कहा, तुम्हारी राय भी ले लूं। फांसी की सजा पर खामोश रह जाना, तो बुजदिली है। किचलू साहब (जज) को सबक देने की जरूरत होगी ताकि उन्हें भी मालूम हो जाए कि नौजवान भारत

इंसाफ का खून देखकर खामोश नहीं रह सकता। सोशल बायकाट कर दिया जाए। उनके महाराज को मैं रख लूंगा, कोचमैन को तुम रख लेना। बच्चा को पानी भी न मिले। जिधर से निकलें, उधर तालियां बजें।

सलीम ने मुस्कराकर कहा-सोचते-सोचते सोची भी तो वही बनियों की बात।

'मगर और कर ही क्या सकते हो?'

'इस बायकाट से क्या होगा- कोतवाली को लिख देगा, बीस महाराज और कोचवान हाजिर कर दिए जाएंगे।'

'दो-चार दिन परेशान तो होंगे हजरत।'

'बिलकुल फजूल-सी बात है। अगर सबक ही देना है, तो ऐसा सबक दो, जो कुछ दिन हजरत को याद रहे। एक आदमी ठीक कर लिया जाए तो ऐन उस वक्त, जब हजरत फैसला सुनाकर बैठने लगें, एक जूता ऐसे निशाने से चलाए कि उनके मुंह पर लगे।'

अमरकान्त ने कहकहा मारकर कहा-बड़े मसखरे हो यार।

'इसमें मसखरेपन की क्या बात है?'

'तो क्या सचमुच तुम जूते लगवाना चाहते हो?'

'जी हां, और क्या मजाक कर रहा हूं- ऐसा सबक देना चाहता हूं कि फिर हजरत यहां मुंह न दिखा सकें।'

अमरकान्त ने सोचा-कुछ भला काम तो है ही, पर बुराई क्या है- लातों के देवता कहीं बातों से मानते हैं- बोला-अच्छी बात है, देखी जाएगी पर ऐसा आदमी कहां मिलेगा?

सलीम ने उसकी सरलता पर मुस्कराकर कहा-आदमी तो ऐसे मिल सकते हैं जो राह चलते गरदन काट लें। यह कौन-सी बड़ी बात है- किसी बदमाश को दो सौ रुपये दे दो, बस। मैंने तो काले खां को सोचा है।

'अच्छा वह उसे तो मैं एक बार अपनी दूकान पर फटकार चुका हूं।'

'तुम्हारी हिमाकत थी। ऐसे दो-चार आदमियों को मिलाए रहना चाहिए। वक्त पर उनसे बड़ा काम निकलता है। मैं और सब बातें तय कर लूंगा पर रुपये की फिक्र तुम करना। मैं तो अपना बजट पूरा कर चुका।'

'अभी तो महीना शुरू हुआ है, भाई।'

'जी हां, यहां शुरू ही में खत्म हो जाते हैं। फिर नोच-खसोट पर चलती है। कहीं अम्मां से दस रुपये उड़ा लाए, कहीं अब्बाजान से किताब के बहाने से दस-पांच ऐंठ लिए। पर दो सौ की थैली जरा मुश्किल से मिलेगी। हां, तुम इंकार कर दोगे, तो मजबूर होकर अम्मां का गला दबाऊंगा।'

अमर ने कहा-रुपये का गम नहीं। मैं जाकर लिए आता हूं।

सलीम ने इतनी रात गए रुपये लाना मुनासिब ना समझा। बात कल के लिए उठा रखी गई। प्रातःकाल अमर रुपये लाएगा और कालेखां से बातचीत पक्की कर ली जाएगी।

अमर घर पहुंचा तो साढ़े दस बज रहे थे। द्वार पर बिजली जल रही थी। बैठक में लालाजी दो-तीन पंडितों के साथ बैठे बातें कर रहे थे। अमरकान्त को शंका हुई, इतनी रात गए यह जग-जग किस बात के लिए है। कोई नया शिगूगा तो नहीं

खिला ।

लालाजी ने उसे देखते ही डांटकर कहा-तुम कहां घूम रहे हो जी दस बजे के निकले-निकले आधी रात को लौटे हो। जरा जाकर लेडी डॉक्टर को बुला लो, वही जो बड़े अस्पताल में रहती है। अपने साथ लिए हुए आना।

अमरकान्त ने डरते-डरते पूछा-क्या किसी की तबीयत...

समरकान्त ने बात काटकर कड़े स्वर में कहा-क्या बक-बक करते हो, मैं जो कहता हूं, वह करो। तुम लोगों ने तो व्यर्थ ही संसार में जन्म लिया। यह मुकदमा क्या हो गया, सारे घर के सिर जैसे भूत सवार हो गया। चटपट जाओ।

अमर को फिर कुछ पूछने का साहस न हुआ। घर में भी न जा सका, धीरे से सड़क पर आया और बाइसिकल पर बैठ ही रहा था कि भीतर से सिल्लो निकल आई। अमर को देखते ही बोली-अरे भैया, सुनो, कहां जाते हो- बहूजी बहुत बेहाल हैं, कब से तुम्हें बुला रही हैं- सारी देह पसीने से तर हो रही है। देखो भैया, मैं सोने की कंठी लूंगी। पीछे से हीला-हवाला न करना।

अमरकान्त समझ गया। बाइसिकल से उतर पड़ा और हवा की भांति झपटता हुआ अंदर जा पहुंचा। वहां रेणुका, एक दाई, पड़ोस की एक ब्राह्मणी और नैना आंगन में बैठी हुई थीं। बीच में एक ढोलक रखी हुई थी। कमरे में सुखदा प्रसव-वेदना से हाय-हाय कर रही थी।

नैना ने दौड़कर अमर का हाथ पकड़ लिया और रोती हुई बोली-तुम कहां थे भैया, भाभी बड़ी देर से बेचैन हैं।

अमर के हृदय में आंसुओं की ऐसी लहर उठी कि वह रो पड़ा। सुखदा के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया पर अंदर पांव न रख सका। उसका हृदय गटा जाता था।

सुखदा ने वेदना-भरी आंखों से उसकी ओर देखकर कहा-अब नहीं बचूंगी हाय पेट में जैसे कोई बछी चुभो रहा है। मेरा कहा-सुना माग करना।

रेणुका ने दौड़कर अमरकान्त से कहा-तुम यहां से जाओ, भैया तुम्हें देखकर वह और भी बेचैन होगी। किसी को भेज दो, लेडी डॉक्टर को बुला लाए। जी कड़ा करो, समझदार होकर रोते हो-

सुखदा बोली-नहीं अम्मां, उनसे कह दो जरा यहां बैठ जाएं। मैं अब न बचूंगी। हाय भगवान् ।

रेणुका ने अमर को डांटकर कहा-मैं तुमसे कहती हूं, यहां से चले जाओ और तुम खड़े रो रहे हो। जाकर लेडी डॉक्टर को बुलवाओ।

अमरकान्त रोता हुआ बाहर निकला और जनाने अस्पताल की ओर चला पर रास्ते में भी रह-रहकर उसके कलेजे में हूक-सी उठती रही। सुखदा की वह वेदनामयी मूर्ति आंखों के सामने फिरती रही।

लेडी डॉक्टर मिस हूपर को अक्सर कुसमय बुलावे आते रहते थे। रात की उसकी फीस दुगुनी थी। अमरकान्त डर रहा था कि कहीं बिगड़े न कि इतनी रात गए क्यों आए लेकिन मिस हूपर ने सहर्ष उसका स्वागत किया और मोटर लाने की आज्ञा देकर उससे बातें करने लगी।

'यह पहला ही बच्चा है?'

'जी हां।'

'आप रोएं नहीं। घबराने की कोई बात नहीं। पहली बार ज्यादा दर्द होता है। औरत बहुत दुर्बल तो नहीं है?'

'आजकल तो बहुत दुबली हो गई है।'

'आपको और पहले आना चाहिए था।'

अमर के प्राण सूख गए। वह क्या जानता था, आज ही यह आफत आने वाली है, नहीं तो कचहरी से सीधे घर आता।

मेम साहब ने फिर कहा-आप लोग अपनी लेडियों को कोई एक्सरसाइज नहीं करवाते। इसलिए दर्द ज्यादा होता है।

अंदर के स्नायु बंधे रह जाते हैं न।

अमरकान्त ने सिसककर कहा-मैडम, अब तो आप ही की दया का भरोसा है।

'मैं तो चलती हूं लेकिन शायद सिविल सर्जन को बुलाना पड़े।'

अमर ने भयातुर होकर कहा-कहिए तो उनको लेता चलूं।

मेम ने उसकी ओर दयाभाव से देखा-नहीं, अभी नहीं। पहले मुझे चलकर देख लेन दो।

अमरकान्त को आश्वासन न हुआ। उसने भय-कातर स्वर में कहा-मैडम, अगर सुखदा को कुछ हो गया, तो मैं भी मर जाऊंगा।

मेम ने चिंतित होकर पूछा-तो क्या हालत अच्छी नहीं है-

'दर्द बहुत हो रहा है।'

'हालत तो अच्छी है?'

'चेहरा पीला पड़ गया है, पसीनाझ।'

'हम पूछते हैं हालत कैसी है- उसका जी तो नहीं डूब रहा है- हाथ-पांव तो ठंडे नहीं हो गए हैं?'

मोटर तैयार हो गई। मेम साहब ने कहा-तुम भी आकर बैठ जाओ। साइकिल कल हमारा आदमी दे आएगा।

अमर ने दीन आग्रह के साथ कहा-आप चलें, मैं जरा सिविल सर्जन के पास होता आऊं। बुलानाले पर लाला समरकान्त का मकान...

'हम जानते हैं।'

मेम साहब तो उधर चली, अमरकान्त सिविल सर्जन को बुलाने चला। ग्यारह बज गए थे। सड़कों पर भी सन्नाटा था। और पूरे तीन मील की मंजिल थी। सिविल सर्जन छावनी में रहता था। वहां पहुंचते-पहुंचते बारह का अमल हो आया। सदर फाटक खुलवाने, फिर साहब को इत्ताला कराने में एक घंटे से ज्यादा लग गया। साहब उठे तो, पर जामे से बाहर। गरजते हुए बोले-हम इस वक्त नहीं जा सकता।

अमर ने निशंक होकर कहा-आप अपनी फीस ही तो लेंगे-

'हमारा रात का फीस सौ रुपये है।'

'कोई हरज नहीं है।'

'तुम फीस लाया है?'

अमर ने डांट बताई-आप हरेक से पेशगी फीस नहीं लेते। लाला समरकान्त उन आदमियों में नहीं हैं जिन पर सौ रुपये का भी विश्वास न किया जा सके। वह इस शहर के सबसे बड़े साहूकार हैं। मैं उनका लड़का हूँ।

साहब कुछ ठंडे पड़े। अमर ने उनको सारी कैफियत सुनाई तो चलने पर तैयार हो गए, अमर ने साइकिल वहीं छोड़ी और साहब के साथ मोटर में जा बैठा। आधा घंटे में मोटर बुलानाले जा पहुंची। अमरकान्त को कुछ दूर से ही शहनाई की आवाज सुनाई दी। बंदूकें छूट रही थीं। उसका हृदय आनंद से फूल उठा।

द्वार पर मोटर रुकी, तो लाला समरकान्त ने आकर डॉक्टर को सलाम किया और बोले-हुजूर के इकबाल से सब चैन-चान है। पोते ने जन्म लिया है।

उनके जाने के बाद लालाजी ने अमरकान्त को आड़े हाथों लिया-मुर्ति में सौ रुपये की चपत पड़ी। अमरकान्त ने झल्लाकर कहा-मुझसे रुपये ले लीजिएगा। आदमी से भूल हो ही जाती है। ऐसे अवसर पर मैं रुपये का मुंह नहीं देखता।

किसी दूसरे अवसर पर अमरकान्त इस फटकार पर घंटों बिसूरा करता, पर इस वक्त उसका मन उत्साह और आनंद में भरा हुआ था। भरे हुए गेंद पर ठोकड़ों का क्या असर- उसके जी में तो आ रहा था, इस वक्त क्या लुटा दूं। वह अब एक पुत्र का पिता है। अब कौन उससे हेकड़ी जता सकता है वह नवजात शिशु जैसे स्वर्ग से उसके लिए आशा और अमरता का आशीर्वाद लेकर आया है। उसे देखकर अपनी आंखें शीतल करने के लिए वह विकल हो रहा था। ओहो इन्हीं आंखों से वह उस देवता के दर्शन करेगा

लेडी हूपर ने उसे प्रतीक्षा भरी आंखों से ताकते देखकर कहा-बाबूजी, आप यों बालक को नहीं देख सकेंगे। आपको बड़ा-सा इनाम देना पड़ेगा।

अमर ने संपन्न नम्रता के साथ कहा-बालक तो आपका है। मैं तो केवल आपका सेवक हूँ। जच्चा की तबीयत कैसी है-

'बहुत अच्छी। अभी सो गई है।'

'बालक खूब स्वस्थ है?'

'हां, अच्छा है। बहुत सुंदर। गुलाब का पुतला-सा।'

यह कहकर सौरगृह में चली गई। महिलाएं तो गाने-बजाने में मग्न थीं। मुहल्ले की पचासों स्त्रियां जमा हो गई थीं और उनका संयुक्त स्वर, जैसे एक रस्सी की भांति स्थूल होकर अमर के गले को बांधो लेता था। उसी वक्त लेडी हूपर ने बालक को गोद में लेकर उसे सौरगृह की तरफ आने का इशारा किया। अमर उमंग से भरा हुआ चला, पर सहसा उसका मन एक विचित्र भय से कातर हो उठा। वह आगे न बढ़ सका। वह पापी मन लिए हुए इस वरदान को कैसे ग्रहण कर सकेगा। वह इस वरदान के योग्य है ही कब- उसने इसके लिए कौन-सी तपस्या की है- यह ईश्वर की अपार दया है-जो उन्होंने यह विभूति उसे प्रदान की। तुम कैसे दयालु हो, भगवान् ।

श्यामल क्षितिज के गर्भ से निकलने वाली बाल-ज्योति की भांति अमरकान्त को अपने अंतःकरण की सारी क्षुद्रता, सारी कलुषता के भीतर से एक प्रकाश-सा निकलता हुआ जान पड़ा, जिसने उसके जीवन की रजत-शोभा प्रदान कर दी। दीपकों के प्रकाश में, संगीत के स्वरों में, गगन की तारिकाओं में उसी शिशु की छवि थी। उसी का माधुर्य था, उसी का नित्य था।

सिल्लो आकर रोने लगी। अमर ने पूछा-तुझे क्या हुआ है- क्यों रोती है-

सिल्लो बोली-मेम साहब ने मुझे भैया को नहीं देखने दिया, दुत्कार दिया। क्या मैं बच्चे को नजर लगा देती- मेरे बच्चे थे, मैंने भी बच्चे पाले हैं। मैं जरा देख लेती तो क्या होता-

अमर ने हंसकर कहा-तू कितनी पागल है, सिल्लो उसने इसलिए मना किया होगा कि कहीं बच्चे को हवा न लग जाए। इन अंग्रेज डॉक्टरनियों के नखरे भी तो निराले होते हैं। समझती-समझाती नहीं, तरह-तरह के नखरे बघारती हैं, लेकिन उनका राज तो आज ही के दिन है न। फिर तो अकेली दाई रह जाएगी। तू ही तो बच्चे को पालेगी, दूसरा कौन पालने वाला बैठा हुआ है-

सिल्लो की आंसू-भरी आंखें मुस्करा पड़ीं। बोली-मैंने दूर से देख लिया। बिलकुल तुमको पड़ा है। रंग बहूजी का है मैं कंठी ले लूंगी, कहे देती हूँ।

दो बज रहे थे। उसी वक्त लाला समरकान्त ने अमर को बुलाया और बोले-नींद तो अब क्या आएगी- बैठकर कल के उत्सव का एक तखमीना बना लो। तुम्हारे जन्म में तो कारबार फैला न था, नैना कन्या थी। पच्चीस वर्ष के बाद भगवान् ने यह दिन दिखाया है। कुछ लोग नाच-मुजरे का विरोध करते हैं। मुझे तो इसमें कोई हानि नहीं दीखती। खुशी के यही अवसर हैं, चार भाई-बंद, यार-दोस्त आते हैं, गाना-बजाना सुनते हैं, प्रीति-भोज में शरीक होते हैं। यही जीवन के सुख हैं। और इस संसार में क्या रखा है।

अमर ने आपत्ति की-लेकिन रंडियों का नाच तो ऐसे शुभ अवसर पर कुछ शोभा नहीं देता।

लालाजी ने प्रतिवाद किया-तुम अपना विज्ञान यहां न घुसेड़ो। मैं तुमसे सलाह नहीं पूछ रहा हूँ। कोई प्रथा चलती है, तो उसका आधार भी होता है। श्रीरामचन्द्र के जन्मोत्सव में अप्सराओं का नाच हुआ था। हमारे समाज में इसे शुभ माना गया है।

अमर ने कहा-अंग्रेजों के समाज में तो इस तरह के जलसे नहीं होते।

लालाजी ने बिल्ली की तरह चूहे पर झपटकर कहा-अंग्रेजों के यहां रंडियां नहीं, घर की बहू-बेटियां नाचती हैं, जैसे हमारे चमारों में होता है। बहू-बेटियों को नचाने से तो यह कहीं अच्छा है कि रंडियां नाचें। कम-से-कम मैं और मेरी तरह के और बुढ़े अपनी बहू-बेटियों को नचाना कभी पसंद न करेंगे।

अमरकान्त को कोई जवाब न सूझा। सलीम और दूसरे यार-दोस्त आएं। खासी चहल-पहल रहेगी। उसने जिद भी की तो क्या नतीजा। लालाजी मानने के नहीं। फिर एक उसके करने से तो नाच का बहिष्कार हो नहीं जाता।

वह बैठकर तखमीना लिखने लगा।

सलीम ने मामूल से कुछ पहले उठकर काले खां को बुलाया और रात का प्रस्ताव उसके सामने रखा। दो सौ रुपये की रकम कुछ कम नहीं होती। काले खां ने छाती ठोंककर कहा-भैया, एक-दो जूते की क्या बात है, कहो तो इजलास पर पचास गिनकर लगाऊँ। छः महीने से बेसी तो होती नहीं। दो सौ रुपये बाल-बच्चों के खाने-पीने के लिए बहुत हैं।

बारह

सलीम ने सोचा अमरकान्त रुपये लिए आता होगा पर आठ बजे, नौ का अमल हुआ और अमर का कहीं पता नहीं।

आया क्यों नहीं- कहीं बीमार तो नहीं पड़ गया। ठीक है, रुपये का इंतजाम कर रहा होगा। बाप तो टका न देंगे। सास से जाकर कहेगा, तब मिलेंगे। आखिर दस बज गए। अमरकान्त के पास चलने को तैयार हुआ कि प्रो शान्तिकुमार आ पहुँचे। सलीम ने द्वार तक जाकर उनका स्वागत किया। डॉ. शान्तिकुमार ने कुर्सी पर लेटते हुए पंखा चलाने का इशारा करके कहा-तुमने कुछ सुना, अमर के घर लड़का हुआ है। वह आज कचहरी न जा सकेगा। उसकी सास भी वहीं हैं। समझ में नहीं आता आज का इंतजाम कैसे होगा- उसके बगैर हम किसी तरह का डिमांड्सट्रिशन (प्रदर्शन) न कर सकेंगे। रेणुकादेवी आ जातीं, तो बहुत-कुछ हो जाता, पर उन्हें भी फुर्सत नहीं है।

सलीम ने काले खां की तरफ देखकर कहा-यह तो आपने बुरी खबर सुनाई। उसके घर में आज ही लड़का भी होना था। बोलो काले खां, अब-

काले खां ने अविचलित भाव से कहा-तो कोई हर्ज नहीं, भैया तुम्हारा काम मैं कर दूंगा। रुपये फिर मिल जाएंगे। अब जाता हूँ, दो-चार रुपये का सामान लेकर घर में रख दूँ। मैं उधर ही से कचहरी चला जाऊँगा ज्योंही तुम इशारा करोगे, बस।

वह चला गया, तो शान्तिकुमार ने संदेहात्मक स्वर में पूछा-यह क्या कह रहा था, मैं न समझा-

सलीम ने इस अंदाज से कहा मानो यह विषय गंभीर विचार के योग्य नहीं है-कुछ नहीं, जरा काले खां की जवांमर्दी का तमाशा देखना है। अमरकान्त की यह सलाह है कि जज साहब आज फैसला सुना चुकें, तो उन्हें थोड़ा-सा सबक दे दिया जाए।

डॉक्टर साहब ने लंबी सांस खींचकर कहा-तो कहो, तुम लोग बदमाशी पर उतर आए। अमरकान्त की यह सलाह है, यह और भी अफसोस की बात है। वह तो यहां है ही नहीं मगर तुम्हारी सलाह से यह तजवीज हुई है, इसीलिए तुम्हारे ऊपर भी इसकी उतनी ही जिम्मेदारी है। मैं इसे कमीनापन कहता हूँ तुम्हें यह समझने का कोई हक नहीं है कि जज साहब अपने अफसरों को खुश करने के लिए इंसाफ का खून कर देंगे। जो आदमी इल्म में, अक्ल में, तजुर्बे में, इज्जत में तुमसे कोसों आगे है, वह इंसाफ में तुमसे पीछे नहीं रह सकता। मुझे इसलिए और भी ज्यादा रंज है कि मैं तुम दोनों को शरीफ और बेलौस समझता था।

सलीम का मुँह जरा-सा निकल आया। ऐसी लताड़ उसने उम्र में कभी न पाई थी। उसके पास अपनी सफाई देने के लिए एक भी तर्क, एक भी शब्द न था। अमरकान्त के सिर इसका भार डालने की नीयत से बोला-मैंने तो अमरकान्त को मना किया था पर जब वह न माने तो मैं क्या करता-

डॉक्टर साहब ने डांटकर कहा-तुम झूठ बोलते हो। मैं यह नहीं मान सकता। यह तुम्हारी शरारत है।

'आपको मेरा यकीन ही न आए, तो क्या इलाज?'

'अमरकान्त के दिल में ऐसी बात हर्गिज नहीं पैदा हो सकती।'

सलीम चुप हो गया। डॉक्टर साहब कह सकते-थे मान लें, अमरकान्त ही ने यह प्रस्ताव पास किया तो तुमने इसे क्यों मान लिया- इसका उसके पास कोई जवाब न था।

एक क्षण के बाद डॉक्टर साहब घड़ी देखते हुए बोले-आज इस लौंडे पर ऐसी गुस्सा आ रही है कि गिनकर पचास हंटर जमाऊँ। इतने दिनों तक इस मुकदमे के पीछे सिर पटकता फिरा, और आज जब फैसले का दिन आया तो लड़के

का जन्मोत्सव मनाने बैठ रहा। न जाने हम लोगों में अपनी जिम्मेदारी का खयाल कब पैदा होगा- पूछो, इस जन्मोत्सव में क्या रखा है- मर्द का काम है संग्राम में डटे रहना खुशियां मनाना तो विलासियों का काम है। मैंने फटकारा तो हंसने लगा। आदमी वह है जो जीवन का एक लक्ष्य बना ले और जिंदगी-भर उसके पीछे पड़ा रहे। कभीर् कर्तव्य से मुंह न मोड़े। यह क्या कि कटे हुए पतंग की तरह जिधर हवा उड़ा ले जाए, उधर चला जाए। तुम तो कचहरी चलने को तैयार हो- हमें और कुछ नहीं कहना है। अगर फैसला अनुकूल है, तो भिखारिन को जुलूस के साथ गंगा-तट तक लाना होगा। वहां सब लोग स्नान करेंगे और अपने घर चले जाएंगे। सजा हो गई तो उसे बधाई देकर विदा करना होगा। आज ही शाम को 'तालीमी इसलाह' पर मेरी स्पीच होगी। उसकी भी फिक्र करनी है। तुम भी कुछ बोलोगे-

सलीम ने सकुचाते हुए कहा-मैं ऐसे मसले पर क्या बोलूंगा-

'क्यों, हर्ज क्या है- मेरे खयालात तुम्हें मालूम हैं। यह किराए की तालीम हमारे कैरेक्टर को तबाह किए डालती है। हमने तालीम को भी एक व्यापार बना लिया है। व्यापार में ज्यादा पूंजी लगाओ, ज्यादा नगा होगा। तालीम में भी खर्च ज्यादा करो, ज्यादा ऊंचा ओहदा पाओगे। मैं चाहता हूं, ऊंची-से-ऊंची तालीम सबके लिए मुआफ हो ताकि गरीब-से-गरीब आदमी भी ऊंची-से-ऊंची लियाकत हासिल कर सके और ऊंचे-से-ऊंचा ओहदा पा सके। यूनिवर्सिटी के दरवाजे मैं सबके लिए खुले रखना चाहता हूं। सारा खर्च गवर्नमेंट पर पड़ना चाहिए। मुल्क को तालीम की उससे कहीं ज्यादा जरूरत है, जितनी फौज की।'

सलीम ने शंका की-फौज न हो, तो मुल्क की हिगाजत कौन करे-

डॉक्टर साहब ने गंभीरता के साथ कहा-मुल्क की हिगाजत करेंगे हम और तुम और मुल्क के दस करोड़ जवान जो अब बहादुरी और हिम्मत में दुनिया की किसी कौम से पीछे नहीं हैं। उसी तरह, जैसे हम और तुम रात को चोरों के आ जाने पर पुलिस को नहीं पुकारते बल्कि अपनी-अपनी लकड़ियां लेकर घरों से निकल पड़ते हैं।

सलीम ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा-मैं बोल तो न सकूंगा, लेकिन आऊंगा जरूर।

सलीम ने मोटर मंगवाई और दोनों आदमी कचहरी चले। आज वहां और दिनों से कहीं ज्यादा भीड़ थीं पर जैसे बिन दूल्हा की बारात हो। कहीं कोई शंखला न थी। सौ सौ, पचास-पचास की टोलियां जगह-जगह खड़ी या बैठी शून्य-दृष्टि से ताक रही थीं। कोई बोलने लगता था, तो सौ-दो सौ आदमी इधर-उधर से आकर उसे घेर लेते थे। डॉक्टर साहब को देखते ही हजारों आदमी उनकी तरफ दौड़े। डॉक्टर साहब मुख्य कार्यकर्ताओं को आवश्यक बातें समझाकर वकालतखाने की तरफ चले, तो देखा लाला समरकान्त सबको निमंत्रण-पत्र बांट रहे हैं। वह उत्सव उस समय वहां सबसे आकर्षक विषय था। लोग बड़ी उत्सुकता से पूछ रहे थे, कौन-कौन सी तवायफें बुलाई गई हैं- भांड भी हैं या नहीं- मांसाहारियों के लिए भी कुछ प्रबंध है- एक जगह दस-बारह सज्जन नाच पर वाद-विवाद कर रहे थे। डॉक्टर साहब को देखते ही एक महाशय ने पूछा-कहिए आप उत्सव में आएंगे, या आपको कोई आपत्ति है-

डॉ. शान्तिकुमार ने उपेक्षा-भाव से कहा-मेरे पास इससे ज्यादा जरूरी काम है।

एक साहब ने पूछा-आखिर आपको नाच से क्यों एतराज है-

डॉक्टर ने अनिच्छा से कहा-इसलिए कि आप और हम नाचना ऐब समझते हैं। नाचना विलास की वस्तु नहीं, भक्ति और आध्यात्मिक आनंद की वस्तु है पर हमने इसे लज्जास्पद बना रखा है। देवियों को विलास और भोग की वस्तु

बनाना अपनी माताओं और बहनों का अपमान करना है। हम सत्य से इतनी दूर हो गए हैं कि उसका यथार्थ रूप भी हमें नहीं दिखाई देता। न!त्य जैसे पवित्र...

सहसा एक युवक ने समीप आकर डॉक्टर साहब को प्रणाम किया। लंबा, दुबला-पतला आदमी था, मुख सूखा हुआ, उदास, कपड़े मैले और जीर्ण, बालों पर गर्द पड़ी हुई। उसकी गोद में एक साल भर का हर्षट-पुष्ट बालक था, बड़ा चंचल लेकिन कुछ डरा हुआ।

डॉक्टर ने पूछा-तुम कौन हो- मुझसे कुछ काम है-

युवक ने इधर-उधर संशय-भरी आंखों से देखा मानो इन आदमियों के सामने वह अपने विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, और बोला-मैं तो ठाकुर हूं। यहां से छः सात कोस पर एक गांव है महुली, वहीं रहता हूं।

डॉक्टर साहब ने उसे तीव्र नेत्रों से देखा, और समझ गए। बोले-अच्छा, वही गांव, जो सड़क के पश्चिम तरफ है। आओ मेरे साथ।

डॉक्टर साहब उसे लिए पास वाले बगीचे में चले गए और एक बेंच पर बैठकर उसकी ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखा कि अब वह उसकी कथा सुनने को तैयार है।

युवक ने सकुचाते हुए कहा-इस मुकदमे में जो औरत है, वह इसी बालक की मां है। घर में हम दो प्राणियों के सिवा कोई और नहीं है। मैं खेती-बाड़ी करता हूं। वह बाजार में कभी-कभी सौदा-सुलुग लाने चली जाती थी। उस दिन गांव वालों के साथ अपने लिए एक साड़ी लेने गई थी। लौटती बार वह वारदात हो गई गांव के सब आदमी छोड़कर भाग गए। उस दिन से वह घर नहीं गई। मैं कुछ नहीं जानता, कहां घूमती रही मैंने भी उसकी खोज नहीं की। अच्छा ही हुआ कि वह उस समय घर नहीं गई, नहीं हम दोनों में एक की या दोनों की जान जाती। इस बच्चे के लिए मुझे विशेष चिंता थी। बार-बार मां को खोजता पर मैं इसे बहलाता रहता। इसी की नींद सोता और इसी की नींद जागता। पहले तो मालूम होता था, बचेगा नहीं लेकिन भगवान् की दया थी। धीरे-धीरे मां को भूल गया। पहले मैं इसका बाप था, अब तो मां-बाप दोनों में ही हूं। बाप कम, मां ज्यादा। मैंने मन में समझा था, वह कहीं डूब मरी होगी। गांव के लोग कभी-कभी कहते-उसकी तरह की एक औरत छावनी की ओर है पर मैं कभी उन पर विश्वास न करता।

जिस दिन मुझे खबर मिली कि लाला समरकान्त की दूकान पर एक औरत ने दो गोरों को मार डाला और उस पर मुकदमा चल रहा है, तब मैं समझ गया कि वही है। उस दिन से हर पेशी पर आता हूं और सबके पीछे खड़ा रहता हूं। किसी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। आज मैंने समझा, अब उससे सदा के लिए नाता टूट रहा है इसलिए बच्चे को लेता आया कि इसके देखने की उसे लालसा न रह जाए। आप लोगों ने तो बहुत खरच-बरच किया पर भाग्य में जो लिखा था, वह कैसे टलता- आपसे यही कहना है कि जज साहब फैसला सुना चुके तो एक छिन के लिए उससे मेरी भेंट करा दीजिएगा। मैं आपसे सत्य कहता हूं बाबूजी, वह अगर बरी हो जाए तो मैं उसके चरण धो-धोकर पीऊं और घर ले जाकर उसकी पूजा करूं। मेरे भाई-बंद अब भी नाक-भों सिकोड़ेंगे पर जब आप लोग जैसे बड़े-बड़े आदमी मेरे पक्ष में हैं, तो मुझे बिरादरी की परवाह नहीं।

शान्तिकुमार ने पूछा-जिस दिन उसका बयान हुआ, उस दिन तुम थे-

युवक ने सजल नेत्र होकर कहा-हां बाबूजी, था। सबके पीछे द्वार पर खड़ा रो रहा था। यही जी में

आता था कि दौड़कर चरणों से लिपट जाऊं और कहूं-मुन्नी, मैं तेरा सेवक हूं, तू अब तक मेरी स्त्री थी आज से मेरी देवी है। मुन्नी ने मेरे पुरखों को तार दिया बाबूजी, और क्या कहूं-

शान्तिकुमार ने फिर पूछा-मान लो, आज वह छूट जाए, तो तुम उसे घर ले जाओगे-

युवक ने पुलकित कंठ से कहा-यह पूछने की बात नहीं है, बाबूजी मैं उसे आंखों पर बैठाकर ले जाऊंगा और जब तक जिऊंगा, उसका दास बना रहकर अपना जनम सफल करूंगा।

एक क्षण के बाद उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा-क्या छूटने की कुछ आशा है, बाबूजी-

'औरों को तो नहीं है पर मुझे है।'

युवक डॉक्टर साहब के चरणों पर गिरकर रोने लगा। चारों ओर निराशा की बातें सुनने के बाद आज उसने आशा का शब्द सुना है और वह निधि पाकर उसके हृदय की समस्त भावनाएं मानो मंगलगान कर रही हैं। और हर्ष के अतिरेक में मनुष्य क्या आंसुओं को संयत रख सकता है-

मोटर का हार्न सुनते ही दोनों ने कचहरी की तरफ देखा। जज साहब आ गए। जनता का वह अपार साफर चारों ओर से उमड़कर अदालत के कमरे के सामने जा पहुंचा। फिर भिखारिन लाई गई। जनता ने उसे देखकर जय-घोष किया। किसी-किसी ने पुष्प-वर्षा भी की। वकील, बैरिस्टर, पुलिस-कर्मचारी, अफसर सभी आ-आकर यथास्थान बैठ गए।

सहसा जज साहब ने एक उड़ती हुई निगाह से जनता को देखा। चारों तरफ सन्नाटा हो गया। असंख्य आंखें जज साहब की ओर ताकने लगीं, मानो कह रही थीं-आप ही हमारे भाग्य विधाता हैं।

जज साहब ने संदूक से टाइप किया हुआ फैसला निकाला और एक बार खांसकर उसे पढ़ने लगे। जनता सिमटकर और समीप आ गई। अधिकांश लोग फैसले का एक शब्द भी समझते न थे पर कान सभी लगाए हुए थे। चावल और बताशों के साथ न जाने कब रुपये भी लूट में मिल जाएं।

कोई पंद्रह मिनट तक जज साहब फैसला पढ़ते रहे, और जनता चिंतामय प्रतीक्षा से तन्मय होकर सुनती रही।

अंत में जज साहब के मुख से निकला-यह ही है कि मुन्नी ने हत्या की...

कितनों ही के दिल बैठ गए। एक-दूसरे की ओर पराधीन नेत्रों से देखने लगे-

जज ने वाक्य की पूर्ति की-लेकिन यह भी ही है कि उसने यह हत्या मानसिक अस्थिरता की दशा में की-इसलिए मैं उसे मुक्त करता हूं।

वाक्य का अंतिम शब्द आनंद की उस तूफानी उमंग में डूब गया। आनंद, महीनों चिंता के बंधनों में पड़े रहने के बाद आज जो छूटा, तो छूटे हुए बछड़े की भांति कुलांचें मारने लगा। लोग मतवाले हो-होकर एक-दूसरे के गले मिलने लगे। घनिष्ठ मित्रों में धौल-धाप्पा होने लगा। कुछ लोगों ने अपनी-अपनी टोपियां उछालीं। जो मसखरे थे, उन्हें जूते उछालने की सूझी। सहसा मुन्नी, डॉक्टर शान्तिकुमार के साथ गंभीर हास्य से अलंकृत, बाहर निकली, मानो कोई रानी अपने मंत्री के साथ आ रही है। जनता की वह सारी उदडंता शांत हो गई। रानी के सम्मुख बेअदबी कौन कर सकता है।

प्रोग्राम पहले ही निश्चित था। पुष्प-वर्षा के पश्चात् मुन्नी के गले में जयमाल डालना था। यह गौरव

जज साहब की धर्मपत्नी को प्राप्त हुआ, जो इस फैसले के बाद जनता की श्रद्धा-पात्री हो चुकी थीं। फिर बैंड बजने लगा। सेवा-समिति के दो सौ युवक केसरिए बाने पहने जुलूस के साथ चलने के लिए तैयार थे। राष्ट्रीय सभा के सेवक भी खाकी वर्दियां पहने झंडियां लिए जमा हो गए। महिलाओं की संख्या एक हजार से कम न थी। निश्चित किया गया था कि जुलूस गंगा-तट तक जाए, वहां एक विराट् सभा हो, मुन्नी को एक थैली भेंट की जाए और सभा भंग हो जाए।

मुन्नी कुछ देर तक तो शांत भाव से यह समारोह देखती रही, फिर शान्तिकुमार से बोली -बाबूजी, आप लोगों ने मेरा जितना सम्मान किया, मैं उसके योग्य नहीं थी अब मेरी आपसे यही विनती है कि मुझे हरिद्वार या किसी दूसरे तीर्थ-स्थान में भेज दीजिए। वहीं भिक्षा मांगकर, यात्रियों की सेवा करके दिन काटूंगी। यह जुलूस और यह धूम-धाममुझ-जैसी अभागिन के लिए शोभा नहीं देता। इन सभी भाई-बहनों से कह दीजिए, अपने-अपने घर जाएं। मैं धूल में पड़ी हुई थी। आप लोगों ने मुझे आकाश पर चढ़ा दिया। अब उससे ऊपर जाने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है, सिर में चक्कर आ जाएगा। मुझे यहीं से स्टेशन भेज दीजिए। आपके पैरों पड़ती हूं।

शान्तिकुमार इस आत्म-दमन पर चकित होकर बोले-यह कैसे हो सकता है, बहन। इतने स्त्री-पुरुष जमा हैं इनकी भक्ति और प्रेम का तो विचार कीजिए। आप जुलूस में न जाएंगी, तो इन्हें कितनी निराशा होगी। मैं तो समझता हूं कि यह लोग आपको छोड़कर कभी न जाएंगे।

'आप लोग मेरा स्वांग बना रहे हैं।'

'ऐसा न कहो बहन तुम्हारा सम्मान करके हम अपना सम्मान कर रहे हैं। और तुम्हें हरिद्वार जाने की जरूरत क्या है- तुम्हारा पति तुम्हें अपने साथ ले जाने के लिए आया हुआ है।'

मुन्नी ने आश्चर्य से डॉक्टर की ओर देखा-मेरा पति मुझे अपने साथ ले जाने के लिए आया हुआ है- आपने कैसे जाना- 'मुझसे थोड़ी देर पहले मिला था।'

'क्या कहता था?'

'यही कि मैं उसे अपने साथ ले जाऊंगा और उसे अपने घर की देवी समझूंगा।'

'उसके साथ कोई बालक भी था?'

'हां, तुम्हारा छोटा बच्चा उसकी गोद में था।'

'बालक बहुत दुबला हो गया होगा?'

'नहीं, मुझे वह हर्षटि-पुष्ट दीखता था।'

'प्रसन्न भी था?'

'हां, खूब हंस रहा था।'

'अम्मां-अम्मां तो न करता होगा?'

'मेरे सामने तो नहीं रोया।'

'अब तो चाहे चलने लगा हो?'

'गोद में था पर ऐसा मालूम होता था कि चलता होगा।'

'अच्छा, उसके बाप की क्या हालत थी- बहुत दुबले हो गए हैं?'

'मैंने उन्हें पहले कब देखा था- हां, दुःखी जरूर थे। यहीं कहीं होंगे, कहो तो तलाश करूं। शायद खुद आते हों।'

मुन्नी ने एक क्षण के बाद सजल नेत्र होकर कहा-उन दोनों को मेरे पास न आने दीजिएगा, बाबूजी मैं आपके पैरों पड़ती हूं। इन आदमियों से कह दीजिए अपने-अपने घर जाएं। मुझे आप स्टेशन पहुंचा दीजिए। मैं आज ही यहां से चली जाऊंगी। पति और पुत्र के मोह में पड़कर उनका सर्वनाश न करूंगी। मेरा यह सम्मान देखकर पतिदेव मुझे ले जाने पर तैयार हो गए होंगे पर उनके मन में क्या है, यह मैं जानती हूं। वह मेरे साथ रहकर संतुष्ट नहीं रह सकते। मैं अब इसी योग्य हूं कि किसी ऐसी जगह चली जाऊं, जहां मुझे कोई न जानता हो वहीं मजूरी करके या भिक्षा मांगकर अपना पेट पालूंगी।

वह एक क्षण चुप रही। शायद देखती कि डॉक्टर साहब क्या जवाब देते हैं। जब डॉक्टर साहब कुछ न बोले तो उसने ऊंचे, कांपते स्वर में लोगों से कहा-बहनो और भाइयो आपने मेरा जो सत्कार किया है, उसके लिए आपकी कहां तक बड़ाई करूं- आपने एक अभागिनी को तार दिया। अब मुझे जाने दीजिए। मेरा जुलूस निकालने के लिए हठ न कीजिए। मैं इसी योग्य हूं कि अपना काला मुंह छिपाए किसी कोने में पड़ी रहूं। इस योग्य नहीं हूं कि मेरी दुर्गति का माहात्म्य किया जाए।

जनता ने बहुत शोर-गुल मचाया, लीडरों ने समझाया, देवियों ने आग्रह किया पर मुन्नी जुलूस पर राजी न हुई और बराबर यही कहती रही कि मुझे स्टेशन पर पहुंचा दो। आखिर मजबूर होकर डॉक्टर साहब ने जनता को विदा किया और मुन्नी को मोटर पर बैठाया।

मुन्नी ने कहा-अब यहां से चलिए और किसी दूर के स्टेशन पर ले चलिए, जहां यह लोग एक भी न हों।

शान्तिकुमार ने इधर-उधर प्रतीक्षा की आंखों से देखकर कहा-इतनी जल्दी न करो बहन, तुम्हारा पति आता ही होगा। जब यह लोग चले जाएंगे, तब वह जरूर आएगा।

मुन्नी ने अशांत भाव से कहा-मैं उनसे नहीं मिलना चाहती बाबूजी, कभी नहीं। उनके मेरे सामने आते ही मारे लज्जा के मेरे प्राण निकल जाएंगे। मैं कह सकती हूं, मैं मर जाऊंगी। आप मुझे जल्दी से ले चलिए। अपने बालक को देखकर मेरे हृदय में मोह की ऐसी आंधी उठेगी कि मेरा सारा विवेक और विचार उसमें तृण के समान उड़ जाएगा। उस मोह में मैं भूल जाऊंगी कि मेरा कलंक उनके जीवन का सर्वनाश कर देगा। मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है- आप मुझे जल्दी यहां से ले चलिए। मैं उस बालक को देखना नहीं चाहती, मेरा देखना उसका विनाश है।

शान्तिकुमार ने मोटर चला दी पर दस ही बीस गज गए होंगे कि पीछे से मुन्नी का पति बालक को गोद में लिए दौड़ता और 'मोटर रोको मोटर रोको।' पुकारता चला आता था। मुन्नी की उस पर नजर पड़ी। उसने मोटर की खिड़की से सिर निकालकर हाथ से मना करते हुए चिल्लाकर कहा-नहीं-नहीं, तुम जाओ, मेरे पीछे मत आओ ईश्वर के लिए मत आओ।

फिर उसने दोनों बांहें फैला दीं, मानो बालक को गोद में ले रही हो और मूर्छित होकर गिर पड़ी।

मोटर तेजी से चली जा रही थी, युवक ठाकुर बालक को लिए खड़ा रो रहा था। कई हजार स्त्री-पुरुष मोटर की तरफ

ताक रहे थे।

तेरह

मुन्नी के बरी होने का समाचार आनन-फानन सारे शहर में फैल गया। इस फैसले की आशा बहुत कम आदमियों को थी। कोई कहता था-जज साहब की स्त्री ने पति से लड़कर फैसला लिखाया। रुठकर मैके चली जा रही थीं। स्त्री जब किसी बात पर अड़ जाए, तो पुरुष कैसे नहीं कर दे- कुछ लोगों का कहना था-सरकार ने जज साहब को हुक्म देकर फैसला कराया है क्योंकि भिखारिन को सजा देने से शहर में दंगा हो जाने का भय था। अमरकान्त उस समय भोज के सरंजाम करने में व्यस्त था पर यह खबर पा जरा देर के लिए सब कुछ भूल गया और इस फैसले का सारा श्रेय खुद लेने लगा। भीतर जाकर रेणुकादेवी से बोला-आपने देखा अम्मांजी, मैं कहता न था, उसे बरी कराके दम लूंगा, वही हुआ। वकीलों और गवाहों के साथ कितनी माथा-पच्ची करनी पड़ी है कि मेरा दिल ही जानता है। बाहर आकर मित्रों से और सामने के दूकानदारों से भी उसने यही डींग मारी।

एक मित्र ने कहा-औरत है बड़ी धुन की पक्की। शौहर के साथ न गई न गई बेचारा पैरों पड़ता रह गया।

अमरकान्त ने दार्शनिक विवेचना के भाव से कहा-जो काम खुद न देखो, वही चौपट हो जाता है। मैं तो इधर फंस गया। उधर किसी से इतना भी न हो सका कि उस औरत को समझाता। मैं होता तो मजाल थी कि वह यों चली जाती। मैं जानता कि यह हाल होगा, तो सब काम छोड़कर जाता और उसे समझाता। मैंने तो समझा डॉक्टर साहब और बीसों आदमी हैं, मेरे न रहने से ऐसा क्या घी का घड़ा लुढ़का जाता है, लेकिन वहां किसी को क्या परवाह नाम तो हो गया। काम हो या जहन्नुम में जाए।

लाला समरकान्त ने नाच-तमाशे और दावत में खूब दिल खोलकर खर्च किया। वही अमरकान्त जो इन मिथ्या व्यवहारों की आलोचना करते कभी न थकता था, अब मुंह तक न खोलता था बल्कि उलटे और बढ़ावा देता था-जो संपन्न हैं, वह ऐसे शुभ अवसर पर न खर्च करेंगे, तो कब करेंगे- धान की यही शोभा है। हां, घर डुंककर तमाशा न देखना चाहिए।

अमरकान्त को अब घर से विशेष घनिष्ठता होती जाती थी। अब वह विद्यालय तो जाने लगा था, पर जलसों और सभाओं से जी चुराता रहता था। अब उसे लेन-देन से उतनी घृणा न थी। शाम-सबरे बराबर दूकान पर आ बैठता और बड़ी तंदेही से काम करता। स्वभाव में कुछ कृपणता भी आ चली थी। दुःखी जनों पर अब भी दया आती थी पर वह दूकान की बंधी हुई कौड़ियों का अतिक्रमण न करने पाती। इस अल्पकाय शिशु ने ऊंट के नन्हे-से नकेल की भांति उसके जीवन का संचालन अपने हाथ में ले लिया था। मानो दीपक के सामने एक भुनगे ने आकर उसकी ज्योति को संकुचित कर दिया था।

तीन महीने बीत गए थे। संध्या का समय था। बच्चा पालने में सो रहा था। सुखदा हाथ में पंखिया लिए एक मोढ़े पर बैठी हुई थी। कृशांगी गर्भिणी मातृत्व के तेज और शक्ति से जैसे खिल उठी थी। उसके माधुर्य में किशोरी की चपलता न थी, गर्भिणी की आलस्यमय कातरता न थी, माता का शांत संतर्पित मंगलमय विलास था।

अमरकान्त कॉलेज से सीधे घर आया और बालक को संचित नेत्रों से देखकर बोला-अब तो ज्वर नहीं है।

सुखदा ने धीरे से शिशु के माथे पर हाथ रखकर कहा-नहीं, इस समय तो नहीं जान पड़ता। अभी गोद में सो गया था, तो

मैंने लिटा दिया।

अमर ने कुर्ते के बटन खोलते हुए कहा-मेरा तो आज वहां बिलकुल जी न लगा। मैं तो ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि मुझे संसार की और कोई वस्तु न चाहिए, यह बालक कुशल से रहे। देखो कैसे मुस्करा रहा है।

सुखदा ने मीठे तिरस्कार से कहा-तुम्हीं ने देख-देखकर नजर लगा दी है।

'मेरा जी तो चाहता है, उसका चुंबन ले लूं।'

'नहीं-नहीं, सोते हुए बच्चों का चुंबन न लेना चाहिए।'

सहसा किसी ने डयोटी में आकर पुकारा। अमर ने जाकर देखा, तो बुढ़िया पठानिन लठिया के सहारे खड़ी है। बोला-आओ पठानिन, तुमने तो सुना होगा, घर में बच्चा हुआ है-

पठानिन ने भीतर आकर कहा-अल्लाह करे जुग-जुग जिए और मेरी उम्र पाए। क्यों बेटा सारे शहर को नेवता हुआ और हम पूछे तक न गए। क्या हमीं सबसे गैर थे- अल्लाह जानता है, जिस दिन यह खुशखबरी सुनी, दिल से दुआ निकली कि अल्लाह इसे सलामत रखे।

अमर ने लज्जित होकर कहा-हां, यह गलती मुझसे हुई पठानिन, मुआफ करो। आओ, बच्चे को देखो। आज इसे न जाने क्यों बुखार हो आया है-

बुढ़िया दबे पांव आंगन में होती हुई सामने के बरामदे में पहुंची और बहू को दुआएं देती हुई बच्चे को देखकर बोली-कुछ नहीं बेटा नजर का फसाद है। मैं एक ताबीज दिए देती हूं, अल्लाह चाहेगा, अभी हंसने-खेलने लगेगा।

सुखदा ने मातृत्व -जनित नम्रता से बुढ़िया के पैरों को आंचल से स्पर्श किया और बोली-चार दिन भी अच्छी तरह नहीं रहता, माता घर में कोई बड़ी-बूढ़ी तो है नहीं। मैं क्या जानूं, कैसे क्या होता है- मेरी अम्मां हैं पर वह रोज तो यहां नहीं आ सकतीं, न मैं ही रोज उनके पास जा सकती हूं।

बुढ़िया ने फिर आशीर्वाद दिया और बोली-जब काम पड़े, मुझे बुला लिया करो बेटा, मैं और किस दिन के लिए जीती हूं- जरा तुम मेरे साथ चले चलो भैया, मैं ताबीज दे दूं।

बुढ़िया ने अपने सलूके की जेब से एक रेशमी कुर्ता और टोपी निकाली और शिशु के सिराहने रखते हुए बोली-यह मेरे लाल की नजर है बेटा, इसे मंजूर करो। मैं और किस लायक हूं- सकीना कई दिन से सीकर रखे हुए थी, चला नहीं जाता बेटा, आज बड़ी हिम्मत करके आई हूं।

सुखदा के पास संबंधियों से मिले हुए कितने अच्छे-से-अच्छे कपड़े रखे हुए थे पर इस सरल उपहार से उसे जो हार्दिक आनंद प्राप्त हुआ वह और किसी उपहार से न हुआ था, क्योंकि इसमें अमीरी का गर्व, दिखावे की इच्छा या प्रथा की शुष्कता न थी। इसमें एक शुभचिंतक की आत्मा थी, प्रेम था और आशीर्वाद था।

बुढ़िया चलने लगी, तो सुखदा ने उसे एक पोटली में थोड़ी-सी मिठाई दी, पान खिलाए और बरौंठे तक उसे विदा करने आई। अमरकान्त ने बाहर आकर एक झुका किया और बुढ़िया के साथ बैठकर ताबीज लेने चला। गंडे-ताबीज पर उसे विश्वास न था पर वृद्धजनों के आशीर्वाद पर था, और उस ताबीज को वह केवल आशीर्वाद समझ रहा था।

रास्ते में बुढ़िया ने कहा-मैंने तुमसे कहा था वह तुम भूल गए, बेटा-

अमर सचमुच भूल गया था। शरमाता हुआ बोला-हां, पठानिन, मुझे याद नहीं आया। मुआफ करो।

'वही सकीना के बारे में।'

अमर ने माथा ठोककर कहा-हां माता, मुझे बिलकुल खयाल न रहा।

'तो अब खयाल रखो, बेटा मेरे और कौन बैठा हुआ है जिससे कहूं- इधर सकीना ने कई रुमाल बनाए हैं। कई टोपियों के पल्ले भी काढ़े हैं पर जब चीज बिकती नहीं, तो दिल नहीं बढ़ता।'

'मुझे वह सब चीजें दे दो। मैं बेचवा दूंगा।'

'तुम्हें तकलीफ न होगी?'

'कोई तकलीफ नहीं। भला इसमें क्या तकलीफ?'

अमरकान्त को बुढ़िया घर में न ले गई। इधर उसकी दशा और भी हीन हो गई थी। रोटियों के भी लाले थे। घर की एक-एक अंगुल जमीन पर उसकी दरिद्रता अंकित हो रही थी। उस घर में अमर को क्या ले जाती- बुढ़ापा निस्संकोच होने पर भी कुछ परदा रखना ही चाहता है। यह उसे इक्के ही पर छोड़कर अंदर गई, और थोड़ी देर में ताबीज और रुमालों की बकची लेकर आ पहुंची।

'ताबीज उसके गले में बंधा देना। फिर कल मुझसे हाल कहना।'

'कल मेरी तातील है। दो-चार दोस्तों से बात करूंगा। शाम तक बन पड़ा तो आऊंगा, नहीं फिर किसी दिन आ जाऊंगा।'

घर आकर अमर ने ताबीज बच्चे के गले में बंधी और दूकान पर जा बैठा। लालाजी ने पूछा-कहां गए थे- दूकान के वक्त कहीं मत जाएँ करो।

अमर ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा-आज पठानिन आ गई। बच्चे के लिए ताबीज देने को कहा था, वही लेने चला गया था।

'मैंने अभी देखा। अब तो अच्छा मालूम होता है। दुष्ट ने मेरी मूंछें पकड़कर खींच लीं। मैंने भी कसकर एक घूंसा जमाया बच्चा को। हां, खूब याद आई, तुम बैठो, मैं जरा शास्त्रीजी के पास से जन्म-पत्री लेता आऊं। आज उन्होंने देने का वादा किया था।'

लालाजी चले गए, तो अमर फिर घर में जा पहुंचा और बच्चे को गोद में लेकर बोला-क्यों जी तुम हमारे बापू की मूंछें उखाड़ते हो खबरदार, जो फिर उनकी मूंछें छुई, नहीं दांत तोड़ दूंगा।

बालक ने उसकी नाक पकड़ ली और उसे निगल जाने की चेष्टा करने लगा, जैसे हनुमान सूर्य को निगल रहे हों।

सुखदा हंसकर बोली-पहले अपनी नाक बचाओ, फिर बाप की मूंछें बचाना।

सलीम ने इतने जोर से पुकारा कि सारा घर हिल उठा।

अमरकान्त ने बाहर आकर कहा-तुम बड़े शैतान हो यार, ऐसा चिल्लाए कि मैं घबरा गया। किधर से आ रहे हो- आओ, कमरे में चलो।

दोनों आदमी बगल वाले कमरे में गए। सलीम ने रात को एक गजल कही थी। वही सुनाने आया था। गजल कह लेने के बाद जब तक वह अमर को सुना न ले, उसे चैन न आता था।

अमर ने कहा-मगर मैं तारीफ न करूंगा, यह समझ लो।

शर्त तो जब है कि तुम तारीफ न करना चाहो, फिर भी करो :

यही दुनियाए उलगत में, हुआ करता है होने दो।

तुम्हें हंसना मुबारक हो, कोई रोता है रोने दो।

अमर ने झूमकर कहा-लाजवाब शेर है, भई बनावट नहीं, दिल से कहता हूं। कितनी मजबूरी है-वाह।

सलीम ने दूसरा शेर पढ़ा :

कसम ले लो जो शिकवा हो तुम्हारी बेवफाई का

किए को अपने रोता हूं मुझे जी भर के रोने दो।

अमर-बड़ा दर्दनाक शेर है, रोंगटे खड़े हो गए। जैसे कोई अपनी बीती गा रहा हो। इस तरह सलीम ने पूरी गजल सुनाई और अमर ने झूम-झूमकर सुनी फिर बातें होने लगीं। अमर ने पठानिन के रुमाल दिखाने शुरू किए।

'एक बुढ़िया रख गई है। गरीब औरत है। जी चाहे दो-चार ले लो।'

सलीम ने रुमालों को देखकर कहा-चीज तो अच्छी है यार, लाओ एक दर्जन लेता जाऊं। किसने बनाए हैं-

'उसी बुढ़िया की एक पोती है।'

'अच्छा, वही तो नहीं, जो एक बार कचहरी में पगली के मुकदमे में गई थी- माशूक तो यार तुमने अच्छा छांटा।'

अमरकान्त ने अपनी सफाई दी-कसम ले लो, जो मैंने उसकी तरफ देखा भी हो।

'मुझे कसम लेने की जरूरत नहीं तुम्हें वह मुबारक हो, मैं तुम्हारा रकीब नहीं बनना चाहता। दर्जन रुमाल कितने के हैं-

'जो मुनासिब समझो दे दो।'

'इसकी कीमत बनाने वाले के ऊपर मुनहसर है। अगर उस हसीना ने बनाए हैं, तो फी रुमाल पांच रुपये। बुढ़िया या किसी और ने बनाए हैं, तो फी रुमाल चार आने।'

'तुम मजाक करते हो। तुम्हें लेना मंजूर नहीं।'

'पहले यह बताओ किसने बनाए हैं?'

'बनाए हैं सकीना ही ने।'

'अच्छा उसका नाम सकीना है। तो मैं फी रूमाल पांच रुपये दे दूंगा। शर्त यह कि तुम मुझे उसका घर दिखा दो।'

'हां शौक से लेकिन तुमने कोई शरारत की तो मैं तुम्हारा जानी दुश्मन हो जाऊंगा। अगर हमदर्द बनकर चलना चाहो तो चलो। मैं तो चाहता हूं, उसकी किसी भले आदमी से शादी हो जाए। है कोई तुम्हारी निगाह में ऐसा आदमी- बस, यही समझ लो कि उसकी तकदीर खुल जाएगी। मैंने ऐसी हयादार और सलीकेमंद लड़की नहीं देखी। मर्द को लुभाने के लिए औरत में जितनी बातें हो सकती हैं, वह सब उसमें मौजूद हैं।'

सलीम ने मुस्कराकर कहा-मालूम होता है, तुम खुद उस पर रीझ चुके। हुस्न में तो वह तुम्हारी बीवी के तलवों के बराबर भी नहीं।

अमरकान्त ने आलोचक के भाव से कहा-औरत में रूप ही सबसे प्यारी चीज नहीं है। मैं तुमसे सच कहता हूं, अगर मेरी शादी न हुई होती और मजहब की रूकावट न होती तो मैं उससे शादी करके अपने को भाग्यवान समझता।

'आखिर उसमें ऐसी क्या बात है, जिस पर तुम इतने लड्डू हो?'

'यह तो मैं खुद नहीं समझ रहा हूं। शायद उसका भोलापन हो। तुम खुद क्यों नहीं कर लेते- मैं यह कह सकता हूं कि उसके साथ तुम्हारी जिंदगी जन्नत बन जाएगी।'

सलीम ने संदिग्ध भाव से कहा-मैंने अपने दिल में जिस औरत का नक्शा खींच रखा है वह कुछ और ही है। शायद वैसी औरत मेरी खयाली दुनिया के बाहर कहीं होगी भी नहीं। मेरी निगाह में कोई आदमी आया, तो बताऊंगा। इस वक्त तो मैं ये रूमाल लिए लेता हूं। पांच रुपये से कम क्या दूं- सकीना कपड़े भी सी लेती होगी- मुझे उम्मीद है कि मेरे घर से उसे काफी काम मिल जाएगा। तुम्हें भी एक दोस्ताना सलाह देता हूं। मैं तुमसे बदगुमानी नहीं करता लेकिन वहां बहुत आमदोरर्ति न रखना, नहीं बदनाम हो जाओगे। तुम चाहे कम बदनाम हो, उस गरीब की तो जिंदगी ही खराब हो जाएगी। ऐसे भले आदमियों की कमी भी नहीं है, जो इस मुआमले को मजहबी रंग देकर तुम्हारे पीछे पड़ जाएंगे। उसकी मदद तो कोई न करेगा तुम्हारे ऊपर उंगली उठाने वाले बहुतेरे निकल आएंगे।

अमरकान्त में उदडंता न थी पर इस समय वह झल्लाकर बोला-मुझे ऐसे कमीने आदमियों की परवाह नहीं है। अपना दिल साफ रहे, तो किसी बात का गम नहीं।

सलीम ने जरा भी बुरा न मानकर कहा-तुम जरूरत से ज्यादा सीधे हो यार, खौफ है, किसी आफत में न फंस जाओ।

दूसरे दिन अमरकान्त ने दूकान बढ़ाकर जेब में पांच रुपये रखे, पठानिन के घर पहुंचा और आवाज दी। वह सोच रहा था-सकीना रुपये पाकर कितनी खुश होगी

अंदर से आवाज आई-कौन है-

अमरकान्त ने अपना नाम बताया।

द्वार तुरंत खुल गए और अमरकान्त ने अंदर कदम रखा पर देखा तो चारों तरफ अंधोरा। पूछा-आज दिया नहीं जलाया, अम्मां-

सकीना बोली-अम्मां तो एक जगह सिलाई का काम लेने गई हैं।

अंधोरा क्यों हैं- चिराग में तेल नहीं है-

सकीना धीरे से बोली-तेल तो है।

'फिर दिया क्यों नहीं जलाती, दियासलाई नहीं है?'

'दियासलाई भी है।'

'तो फिर चिराग जलाओ। कल जो रुमाल मैं ले गया था, वह पांच रुपये पर बिक गए हैं, ये रुपये ले लो। चटपट चिराग जलाओ।'

सकीना ने कोई जवाब न दिया। उसकी सिसकियों की आवाज सुनाई दी। अमर ने चौंककर पूछा-क्या बात है सकीना-तुम रो क्यों रही हो-

सकीना ने सिसकते हुए कहा-कुछ नहीं, आप जाइए। मैं अम्मां को रुपये दे दूंगी।

अमर ने व्याकुलता से कहा-जब तक तुम बता न दोगी, मैं न जाऊंगा। तेल न हो तो मैं ला दूं, दियासलाई न हो तो मैं ला दूं, कल एक लैंप लेता आऊंगा। कुप्पी के सामने बैठकर काम करने से आंखें खराब हो जाती हैं। घर के आदमी से क्या परदा- मैं अगर तुम्हें गैर समझता, तो इस तरह बार-बार क्यों आता-

सकीना सामने के सायबान में जाकर बोली-मेरे कपड़े गीले हैं। आपकी आवाज सुनकर मैंने चिराग बुझा दिया।

'तो गीले कपड़े क्यों पहन रखे हैं?'

'कपड़े मैले हो गए थे। साबुन लगाकर रख दिए थे। अब और कुछ न पूछिए। कोई दूसरा होता, तो मैं किवाड़ न खोलती।'

अमरकान्त का कलेजा मसोस उठा। उफ इतनी घोर दरिद्रता पहनने को कपड़े तक नहीं। अब उसे ज्ञात हुआ कि कल पठानिन ने रेशमी कुर्ता और टोपी उपहार में दी थी, उसके लिए कितना त्याग किया था। दो रुपये से कम क्या खर्च हुए होंगे- दो रुपये में दो पाजामे बन सकते थे। इन गरीब प्राणियों में कितनी उदारता है। जिसे ये अपना धर्म समझते हैं, उसके लिए कितना कष्ट झेलने को तैयार रहते हैं।

उसने सकीना से कांपते स्वर में कहा-तुम चिराग जला लो। मैं अभी आता हूं।

गोवरधान सराय से चौक तक वह हवा के वेग से गया पर बाजार बंद हो चुका था। अब क्या करे- सकीना अभी तक गीले कपड़े पहने बैठी होगी। आज इन सबों ने इतनी जल्द क्यों दूकान बंद कर दी- वह यहां से उसी वेग के साथ घर पहुंचा। सुखदा के पास पचासों साड़ियां हैं। कई मामूली भी हैं। क्या वह उनमें से साड़ियां न दे देगी- मगर वह पूछेगी-क्या करोगे, तो क्या जवाब देगा- साफ-साफ कहने से तो वह शायद संदेह करने लगे। नहीं, इस वक्त सफाई देने का अवसर न था। सकीना गीले कपड़े पहने उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। सुखदा नीचे थी। वह चुपके से ऊपर चला गया, गठरी खोली और उसमें से चार साड़ियां निकालकर दबे पांव चल दिया।

सुखदा ने पूछा-अब कहां जा रहे हो- भोजन क्यों नहीं कर लेते-

अमर ने बरोठे से जवाब दिया-अभी आता हूं।

कुछ दूर जाने पर उसने सोचा-कल कहीं सुखदा ने अपनी गठरी खोली और साड़ियां न मिलीं तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी। नौकरों के सिर जाएगी। क्या वह उस वक्त यह कहने का साहस रखता था कि वे साड़ियां मैंने एक गरीब औरत को दे दी हैं- नहीं, वह यह नहीं कह सकता, तो साड़ियां ले जाकर रख दे- मगर वहां सकीना गीले कपड़े

पहने बैठी होगी। फिर खयाल आया-सकीना इन साड़ियों को पाकर कितनी प्रसन्न होगी इस खयाल ने उसे उन्मत्त कर दिया। जल्द-जल्द कदम बढ़ाता हुआ सकीना के घर जा पहुंचा।

सकीना ने उसकी आवाज सुनते ही द्वार खोल दिया। चिराग जल रहा था। सकीना ने इतनी देर में आग जलाकर कपड़े सुखा लिए थे और कुरता-पाजामा पहने, ओढ़नी ओढ़े खड़ी थी अमर ने साड़ियां खाट पर रख दीं और बोला-बाजार में तो न मिलीं, घर जाना पड़ा। हमदर्दों से परदा न रखना चाहिए।

सकीना ने साड़ियों को लेकर देखा और सकुचाती हुई बोली-बाबूजी, आप नाहक साड़ियां लाए। अम्मां देखेंगी, तो जल उठेंगी। फिर शायद आपका यहां आना मुश्किल हो जाए। आपकी शराफत और हमदर्दी की जितनी तारीफ अम्मां करती थीं, उससे कहीं ज्यादा पाया। आप यहां ज्यादा आया भी न करें, नहीं ख्वामख्वाह लोगों को शुबहा होगा। मेरी वजह से आपके ऊपर कोई शुबहा करे, यह मैं नहीं चाहती।

आवाज कितनी मीठी थी। भाव में कितनी नम्रता, कितना विश्वास। पर उसमें वह हर्ष न था, जिसकी अमर ने कल्पना की थी। अगर बुढ़िया इस सरल स्नेह को संदेह की दृष्टि से देखे, तो निश्चय ही उसका आना-जाना बंद हो जाएगा। उसने अपने मन को टटोलकर देखा, उस प्रकार के संदेह का कोई कारण नहीं है। उसका मन स्वच्छ था। वहां किसी प्रकार की कुत्सित भावना न थी। फिर भी सकीना से मिलना बंद हो जाने की संभावना उसके लिए असह्य थी। उसका शासित, दलित पुरुषत्व यहां अपने प्राकृतिक रूप में प्रकट हो सकता था। सुखदा की प्रतिभा, प्रगल्भता और स्वतंत्रता, जैसे उसके सिर पर सवार रहती थी। वह उसके सामने अपने को दबाए रखने पर मजबूर था। आत्मा में जो एक प्रकार के विकार और व्यक्तीकरण की आकांक्षा होती है, वह अपूर्ण रहती थी। सुखदा उसे पराभूत कर देती थी, सकीना उसे गौरवान्वित करती थी। सुखदा उसका दफ्तर थी, सकीना घर। वहां वह दास था, यहां स्वामी।

उसने साड़ियां उठा लीं और व्यथित कंठ से बोला-अगर यह बात है, तो मैं इन साड़ियों को लिए जाता हूं सकीना लेकिन मैं कह नहीं सकता, मुझे इससे कितना रंज होगा। रहा मेरा आना-जाना, अगर तुम्हारी इच्छा है कि मैं न आऊं, तो मैं भूलकर भी न आऊंगा लेकिन पड़ोसियों की मुझे परवाह नहीं है।

सकीना ने करुण स्वर में कहा-बाबूजी, मैं आपसे हाथ जोड़ती हूं, ऐसी बात मुंह से न निकालिए। जब से आप आने-जाने लगे हैं, मेरे लिए दुनिया कुछ और हो गई है। मैं अपने दिल में एक ऐसी ताकत, ऐसी उमंग पाती हूं, जिसे एक तरह का नशा कह सकती हूं, लेकिन बदगोई से तो डरना ही पड़ता है।

अमर ने उन्मत्ता होकर कहा-मैं बदगोई से नहीं डरता, सकीना रत्नी भर भी नहीं।

लेकिन एक ही पल में वह समझ गया-मैं बहका जाता हूं बोला-मगर तुम ठीक कहती हो। दुनिया और चाहे कुछ न करे, बदनाम तो कर ही सकती है।

दोनों एक मिनट शांत बैठे रहे, तब अमर ने कहा-और रूमाल बना लेना। कपड़ों का प्रबंध भी हो रहा है। अच्छा अब चलूंगा। लाओ, साड़ियां लेता जाऊं।

सकीना ने अमर की मुद्रा देखी। मालूम होता था, रोना ही चाहता है। उसके जी में आया, साड़ियां उठाकर छाती से लगा ले, पर संयम ने हाथ न उठाने दिया। अमर ने साड़ियां उठा लीं और लड़खड़ाता हुआ द्वार से निकल गया, मानो अब गिरा, अब गिरा।

चौदह

अमरकान्त का मन फिर से उचाट होने लगा। सकीना उसकी आंखों में बसी हुई थी। सकीना के ये शब्द उनके कानों में गूँज रहे थे...मेरे लिए दुनिया कुछ और हो गई है। मैं अपने दिल में ऐसी ताकत, ऐसी उमंग पाती हूँ इन शब्दों में उसकी पुरुष कल्पना को ऐसी आनंदप्रद उत्तिजना मिलती थी कि वह अपने को भूल जाता था। फिर दूकान से उसकी रुचि घटने लगी। रमणी की नम्रता और सलज्ज अनुरोधा का स्वाद पा जाने के बाद अब सुखदा की प्रतिभा और गरिमा उसे बोझ-सी लगती थी। वहां हरे-भरे पत्तियों में रूखी-सूखी सामग्री थी यहां सोने-चांदी के थालों में नाना व्यंजन सजे हुए थे। वहां सरल स्नेह था, यहां गर्व का दिखावा था। वह सरल स्नेह का प्रसाद उसे अपनी ओर खींचता था, यह अमीरी ठाट अपनी ओर से हटाता था। बचपन में ही वह माता के स्नेह से वंचित हो गया था। जीवन के पंद्रह साल उसने शुष्क शासन में काटे। कभी मां डांटती, कभी बाप बिगड़ता, केवल नैना की कोमलता उसके भग्न हृदय पर गाहा रखती रहती थी। सुखदा भी आई, तो वही शासन और गरिमा लेकर स्नेह का प्रसाद उसे यहां भी न मिला। वह चिरकाल की स्नेह-त्ष्णा किसी प्यासे पक्षी की भांति, जो कई सरोवरों के सूखे तट से निराश लौट आया हो, स्नेह की यह शीतल छाया देखकर विश्राम और तृप्ति के लोभ से उसकी शरण में आई। यहां शीतल छाया ही न थी, जल भी था, पक्षी यहीं रम जाए तो कोई आश्चर्य है।

उस दिन सकीना की घोर दरिद्रता देखकर वह आहत हो उठा था। वह विद्रोह जो कुछ दिनों उसके मन में शांत हो गया था फिर दूने वेग से उठा। वह धर्म के पीछे लाठी लेकर दौड़ने लगा। धान के इस बंधन का उसे बचपन से ही अनुभव होता आया था। धर्म का बंधन उससे कहीं कठोर, कहीं असहाय, कहीं निरर्थक था। धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए। यहां धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है। क्यों खान-पान में, रस्म-रिवाज में धर्म अपनी टांगें अड़ाता है- मैं चोरी करूँ, खून करूँ, धोखा दूँ, धर्म मुझे अलग नहीं कर सकता। अछूत के हाथ से पानी पी लूँ, धर्म छूमंतर हो गया। अच्छा धर्म है हम धर्म के बाहर किसी से आत्मा का संबंध भी नहीं कर सकते- आत्मा को भी धर्म ने बंधा रखा है, प्रेम को भी जकड़ रखा है। यह धर्म नहीं, धर्म का कलंक है।

अमरकान्त इसी उधोड़-बुन में पड़ा रहता। बुढ़िया हर महीने, और कभी-कभी महीने में दो-तीन बार, रूमालों की पोटलियां बनाकर लाती और अमर उसे मुंह मांगे दाम देकर ले लेता। रेणुका, उसको जेब खर्च के लिए जो रुपये देतीं, वह सब-के-सब रूमालों में जाते। सलीम का भी इस व्यवसाय में साझा था। उसके मित्रों में ऐसा कोई न था, जिसने एक-आधा दर्जन रूमाल न लिए हों। सलीम के घर से सिलाई का काम भी मिल जाता। बुढ़िया का सुखदा और रेणुका से भी परिचय हो गया था। चिकन की साड़ियां और चादरें बनाने का काम भी मिलने लगा उस दिन से अमर बुढ़िया के घर न गया। कई बार वह मजबूत इरादा करके चला पर आधो रास्ते से लौट आया।

विद्यालय में एक बार 'धर्म' पर विवाद हुआ। अमर ने उस अवसर पर जो भाषण किया, उसने सारे शहर में धूम मचा दी। वह अब क्रांति ही में देश का उबर समझता था-ऐसी क्रांति में, जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धांतों का, परिपाटियों का अंत कर दे, जो एक नए युग की प्रवृत्ताक हो, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर दे, जो मनुष्य को धान और धर्म के आधार पर टिकने वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे। उसके एक-एक अणु से क्रान्ति क्रान्ति।' की आवाज सदा निकलती रहती थी लेकिन उदार हिन्दू-समाज उस वक्त तक किसी से नहीं बोलता, जब तक उसके लोकाचार पर खुल्लम-खुल्ला आघात न हो। कोई क्रांति नहीं, क्रांति के बाबा का ही उपदेश क्यों न करे, उसे परवाह नहीं होती लेकिन उपदेश की सीमा के बाहर व्यवहार क्षेत्र में किसी

ने पांव निकाला और समाज ने उसकी गर्दन पकड़ी। अमर की क्रांति अभी तक व्याख्यानों और लेखों तक सीमित थी। डिग्री की परीक्षा समाप्त होते ही वह व्यवहार-क्षेत्र में उतरना चाहता था। पर अभी परीक्षा को एक महीना बाकी ही था कि एक ऐसी घटना हो गई, जिसने उसे मैदान में आने को मजबूर कर दिया। यह सकीना की शादी थी।

एक दिन संध्या समय अमरकान्त दूकान पर बैठा हुआ था कि बुढ़िया सुखदा की चिकनी की साड़ी लेकर आई और अमर से बोली-बेटा, अल्ला के गजल से सकीना की शादी ठीक हो गई है आठवीं को निकाह हो जाएगा। और तो मैंने सब सामान जमा कर लिया है पर कुछ रुपयों से मदद करना।

अमर की नाड़ियों में जैसे रक्त न था। हकलाकर बोला-सकीना की शादी ऐसी क्या जल्दी थी-

'क्या करती बेटा, गुजर तो नहीं होता, फिर जवान लड़की बदनामी भी तो है।'

'सकीना भी राजी है?'

बुढ़िया ने सरल भाव से कहा-लड़कियां कहीं अपने मुंह से कुछ कहती हैं बेटा- वह तो नहीं-नहीं किए जाती है।

अमर ने गरजकर कहा-फिर भी तुम शादी किए देती हो- फिर संभलकर बोला- रुपये के लिए दादा से कहो।

'तुम मेरी तरफ से सिफारिश कर देना बेटा, कह तो मैं आप लूंगी।'

'मैं सिफारिश करने वाला कौन होता हूं- दादा तुम्हें जितना जानते हैं, उतना मैं नहीं जानता।'

बुढ़िया को वहीं खड़ी छोड़कर, अमर बदहवास सलीम के पास पहुंचा। सलीम ने उसकी बौखलाई हुई सूरत देखकर पूछा-खैर तो है- बदहवास क्यों हो-

अमर ने संयत होकर कहा-बदहवास तो नहीं हूं। तुम खुद बदहवास होगे।

'अच्छा तो आओ, तुम्हें अपनी ताजी गजल सुनाऊं। ऐसे-ऐसे शेर निकाले हैं कि गड़क न जाओ तो मेरा जिम्मा।'

अमरकान्त की गर्दन में जैसे फांसी पड़ गई, पर कैसे कहे-मेरी इच्छा नहीं है। सलीम ने मतला पढ़ा :

बहला के सवेरा करते हैं इस दिल को उन्हीं की बातों में,

दिल जलता है अपना जिनकी तरह, बरसात की भीगी रातों में।

अमर ने ऊपरी दिल से कहा-अच्छा शेर है।

सलीम हतोत्साह न हुआ। दूसरा शेर पढ़ा :

कुछ मेरी नजर ने उठ के कहा कुछ उनकी नजर ने झुक के कहा,

झगड़ा जो न बरसों में चुकता, तय हो गया बातों-बातों में।

अमर झूम उठा-खूब कहा है भई वाह वाह लाओ कलम चूम लूं। सलीम ने तीसरा शेर सुनाया :

यह यास का सन्नाटा तो न था, जब आस लगाए सुनते थे,
माना कि था धोखा ही धोखा, उन मीठी-मीठी बातों में।

अमर ने कलेजा थाम लिया-गजब का दर्द है भई दिल मसोस उठा।

एक क्षण के बाद सलीम ने छेड़ा-इधर एक महीने से सकीना ने कोई रुमाल नहीं भेजा क्या-

अमर ने गंभीर होकर कहा-तुम तो यार, मजाक करते हो। उसकी शादी हो रही है। एक ही हत्तर्िा और है।

'तो तुम दुल्हिन की तरफ से बारात में जाना। मैं दूल्हे की तरफ से जाऊंगा।'

अमर ने आंखें निकलाकर कहा-मेरे जीते-जी यह शादी नहीं हो सकती। मैं तुमसे कहता हूं सलीम, मैं सकीना के दरवाजे पर जान दे दूंगा, सिर पटक-पटककर मर जाऊंगा।

सलीम ने घबराकर पूछा-यह तुम कैसी बातें कर रहे हो, भाईजान- सकीना पर आशिक तो नहीं हो गए- क्या सचमुच मेरा गुमान सही था-

अमर ने आंखों में आंसू भरकर कहा-मैं कुछ नहीं कह सकता, मेरी क्यों ऐसी हालत हो रही है सलीम पर जब से मैंने यह खबर सुनी है मेरे जिगर में जैसे आरा-सा चल रहा है।

'आखिर तुम चाहते क्या हो- तुम उससे शादी तो नहीं कर सकते।'

'क्यों नहीं कर सकता?'

'बिल्कुल बच्चे न बन जाओ। जरा अक्ल से काम लो।'

'तुम्हारी यही तो मंशा है कि वह मुसलमान है, मैं हिन्दू हूं। मैं प्रेम के समने मजहब की हकीकत नहीं समझता, कुछ भी नहीं।'

सलीम ने अविश्वास के भाव से कहा-तुम्हारे खयालात तकरीरों में सुन चुका हूं, अखबारों में पढ़ चुका हूं। ऐसे खयालात बहुत ऊंचे, बहुत पाकीजा, दुनिया में इंकलाब पैदा करने वाले हैं और कितनों ने ही इन्हें जाहिर करके नामवरी हासिल की है, लेकिन इल्मी बहस दूसरी चीज है, उस पर अमल करना दूसरी चीज है। बगावत पर इल्मी बहस कीजिए, लोग शौक से सुनेंगे। बगावत करने के लिए तलवार उठाइए और आप सारी सोसाइटी के दुश्मन हो जाएंगे। इल्मी बहस से किसी को चोट नहीं लगती। बगावत से गरदनें कटती हैं। मगर तुमने सकीना से भी पूछा, वह तुमसे शादी करने पर राजी है-

अमर कुछ झिझका। इस तरफ उसने ध्यान ही न दिया था। उसने शायद दिल में समझ लिया था, मेरे कहने की देर है, वह तो राजी ही है। उन शब्दों के बाद अब उसे कुछ पूछने की जरूरत न मालूम हुई।

'मुझे यकीन है कि वह राजी है।'

'यकीन कैसे हुआ?'

'उसने ऐसी बातें की हैं, जिनका मतलब इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।'

'तुमने उससे कहा-मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ?'

'उससे पूछने की मैं जरूरत नहीं समझता।'

'तो एक ऐसी बात को, जो तुमसे एक हमदर्द के नाते कही थी, तुमने शादी का वादा समझ लिया। वाह री आपकी अक्ल मैं कहता हूँ, तुम भंग तो नहीं खा गए हो, या बहुत पढ़ने से तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया है- परी से ज्यादा हसीन बीबी, चांद-सा बच्चा और दुनिया की सारी नेमतों को आप तिलांजलि देने पर तैयार हैं, उस जुलाहे की नमकीन और शायद सलीकेदार छोकरी के लिए तुमने इसे भी कोई तकरीर या मजमून समझ रखा है- सरे शहर में तहलका पड़ जाएगा जनाब, भूचाल आ जाएगा, शहर ही में नहीं, सूबे भर में, बल्कि शुमाली हिन्दोस्तान भर में। आप हैं किस फेर में- जान से हाथ धोना पड़े, तो ताज्जुब नहीं।'

अमरकान्त इन सारी बाधाओं को सोच चुका था। इनसे वह जरा भी विचलित न हुआ था। और अगर इसके लिए समाज उसे दंड देता है, तो उसे परवाह नहीं। वह अपने हक के लिए मर जाना इससे कहीं अच्छा समझता है कि उसे छोड़कर कायरों की जिंदगी काटे। समाज उसकी जिंदगी को तबाह करने का कोई हक नहीं रखता। बोला-मैं यह सब जानता हूँ सलीम, लेकिन मैं अपनी आत्मा को समाज का गुलाम नहीं बनाना चाहता। नतीजा जो कुछ भी हो उसके लिए मैं तैयार हूँ। यह मुआमला मेरे और सकीना के दरमियान है। सोसाइटी को हमारे बीच में दखल देने का कोई हक नहीं।

सलीम ने संदिग्धा भाव से सिर हिलाकर कहा-सकीना कभी मंजूर न करेगी, अगर उसे तुमसे मुहब्बत है। हां, अगर वह तुम्हारी मुहब्बत का तमाशा देखना चाहती है, तो शायद मंजूर कर ले मगर मैं पूछता हूँ, उसमें क्या खूबी है, जिसके लिए तुम खुद इतनी बड़ी कुर्बानी करने और कई जिंदगियों को खाक में मिलाने पर आमादा हो-

अमर को यह बात अप्रिय लगी। मुंह सिकोड़कर बोला-मैं कोई कुर्बानी नहीं कर रहा हूँ और न किसी की जिंदगी को खाक में मिला रहा हूँ। मैं सिर्फ उस रास्ते पर जा रहा हूँ, जिधर मेरी आत्मा मुझे ले जा रही है। मैं किसी रिश्ते या दौलत को अपनी आत्मा के गले की जंजीर नहीं बना सकता। मैं उन आदमियों में नहीं हूँ, जो जिंदगी की जंजीरों को ही जिंदगी समझते हैं। मैं जिंदगी की आरजुओं को जिंदगी समझता हूँ। मुझे जिंदा रहने के लिए एक ऐसे दिल की जरूरत है, जिसमें आरजुएं हों, दर्द हो, त्याग हो, सौदा हो। जो मेरे साथ रो सकता हो मेरे साथ जल सकता हो। महसूस करता हूँ कि मेरी जिंदगी पर रोज-ब-रोज जंग लगता जा रहा है। इन चंद सालों में मेरा कितना ईहानी जवाल हुआ, इसे मैं ही समझता हूँ। मैं जंजीरों में जकड़ा जा रहा हूँ। सकीना ही मुझे आजाद कर सकती है, उसी के साथ मैं ईहानी बुलंदियों पर उड़ सकता हूँ, उसी के साथ मैं अपने को पा सकता हूँ। तुम कहते हो-पहले उससे पूछ लो। तुम्हारा खयाल है-वह कभी मंजूर न करेगी। मुझे यकीन है-मुहब्बत जैसी अनमोल चीज पाकर कोई उसे रप्र नहीं कर सकता।

सलीम ने पूछा-अगर वह कहे तुम मुसलमान हो जाओ-

'वह यह नहीं कह सकती।'

'मान लो, कहे।'

'तो मैं उसी वक्त एक मौलवी को बुलाकर कलमा पढ़ लूंगा। मुझे इस्लाम में ऐसी कोई बात नहीं नजर आती, जिसे मेरी आत्मा स्वीकार न करती हो। धर्म-तर्क सब एक हैं। हजरत मुहम्मद को खुदा का रसूल मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं।

जिस सेवा, त्याग, दया, आत्म-शुद्धि पर हिन्दू-धर्म की बुनियाद कायम है, उसी पर इस्लाम की बुनियाद भी कायम है। इस्लाम मुझे बुद्धू और कृष्ण और राम की ताजीम करने से नहीं रोकता। मैं इस वक्त अपनी इच्छा से हिन्दू नहीं हूँ बल्कि इसलिए कि हिन्दू घर में पैदा हुआ हूँ। तब भी मैं अपनी इच्छा से मुसलमान न हूँगा बल्कि इसलिए कि सकीना की मरजी है। मेरा अपना ईमान यह है कि मजहब आत्मा के लिए बंधन है। मेरी अक्ल जिसे कबूल करे, वही मेरा मजहब है। बाकी खुरागात ।'

सलीम इस जवाब के लिए तैयार न था। इस जवाब ने उसे निश्चिन्त कर दिया। ऐसे मनोद्वारों ने उसके अंतःकरण को कभी स्पर्श न किया था। प्रेम को वह वासना मात्र समझता था। जरा-से उद्गार को इतना वृहद् रूप देना, उसके लिए इतनी कुर्बानियां करना, सारी दुनिया में बदनाम होना और चारों ओर एक तहलका मचा देना, उसे पागलपन मालूम होता था।

उसने सिर हिलाकर कहा-सकीना कभी मंजूर न करेगी।

अमर ने शांत भाव से कहा-तुम ऐसा क्यों समझते हो-

'इसलिए कि अगर उसे जरा भी अक्ल है, तो वह एक खानदान को कभी तबाह न करेगी।'

'इसके यह माने हैं कि उसे मेरे खानदान की मुहब्बत मुझसे ज्यादा है। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि मेरा खानदान क्या तबाह हो जाएगा- दादा को और सुखदा को दौलत मुझसे ज्यादा प्यारी है। बच्चे को तब भी मैं इसी तरह प्यार कर सकता हूँ। ज्यादा-से-ज्यादा इतना होगा कि मैं घर में न जाऊंगा और उनके घड़े-मटके न छूऊंगा।'

सलीम ने पूछा-डॉक्टर शान्तिकुमार से भी इसका जिक्र किया है-

अमर ने जैसे मित्र की मोटी अक्ल से हताश होकर कहा-नहीं, मैंने उनसे जिक्र करने की जरूरत नहीं समझी। तुमसे भी सलाह लेने नहीं आया हूँ सिर्फ दिल का बोझ हल्का करने के लिए। मेरा इरादा पक्का हो चुका है। अगर सकीना ने मायूस कर दिया, तो जिंदगी का खात्मा कर दूंगा। राजी हुई, तो हम दोनों चुपके से कहीं चले जाएंगे। किसी को खबर भी न होगी। दो-चार महीने बाद घर वालों को सूचना दे दूंगा। न कोई तहलका मचेगा, न कोई तूफान आएगा। यह है मेरा प्रोग्राम। मैं इसी वक्त उसके पास जाता हूँ, अगर उसने मंजूर कर लिया, तो लौटकर फिर यहीं आऊंगा, और मायूस किया तो तुम मेरी सूरत न देखोगे।

यह कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ और तेजी से गोवर्धन सराय की तरफ चला। सलीम उसे रोकने का इरादा करके भी न रोक सका। शायद वह समझ गया था कि इस वक्त इसके सिर पर भूत सवार है, किसी की न सुनेगा।

माघ की रात। कड़ाके की सर्दी। आकाश पर धुआं छाया हुआ था। अमरकान्त अपनी धुन में मस्त चला जाता था। सकीना पर क्रोध आने लगा। मुझे पत्र तक न लिखा। एक कार्ड भी न डाला। फिर उसे एक विचित्र भय उत्पन्न हुआ। सकीना कहीं बुरा न मान जाए। उसके शब्दों का आशय यह तो नहीं था कि वह उसके साथ कहीं जाने पर तैयार है। संभव है उसकी रजामंदी से बुढ़िया ने विवाह ठीक किया हो। संभव है, उस आदमी की उसके यहां आमदरती भी हो। वह इस समय वहां बैठा हो। अगर ऐसा हुआ, तो अमर वहां से चुपचाप चला आएगा। बुढ़िया आ गई होगी तो उसके सामने उसे और भी संकोच होगा। वह सकीना से एकांत में वार्तालाप का अवसर चाहता था।

सकीना के द्वार पर पहुंचा, तो उसका दिल धड़क रहा था। उसने एक क्षण कान लगाकर सुना। किसी की आवाज न सुनाई दी। आंगन में प्रकाश था। शायद सकीना अकेली है। मुंह मांगी मुराद मिली। आहिस्ता से जंजीर खटखटाई। सकीना ने पूछकर तुरंत द्वार खोल दिया और बोली-अम्मां तो आप ही के यहां गई हुई हैं।

अमर ने खड़े-खड़े जवाब दिया-हां, मुझसे मिली थीं, और उन्होंने जो खबर सुनाई, उसने मुझे दीवाना बना रखा है। अभी तक मैंने अपने दिल का राज तुमसे छिपाया था सकीना, और सोचा था कि उसे कुछ दिन और छिपाए रहूंगा लेकिन इस खबर ने मुझे मजबूर कर दिया है कि तुमसे वह राज कहूं। तुम सुनकर जो फैसला करोगी, उसी पर मेरी जिंदगी का दारोमदार है। तुम्हारे पैरों पर पड़ा हुआ हूं, चाहे ठुकरा दो, या उठाकर सीने से लगा लो। कह नहीं सकता यह आग मेरे दिल में क्योंकर लगी लेकिन जिस दिन तुम्हें पहली बार देखा, उसी दिन से एक चिंगारी-सी अंदर बैठ गई और अब वह एक शोला बन गई है। और अगर उसे जल्द बुझाया न गया, तो मुझे जलाकर खाक कर देगी। मैंने बहुत जब्त किया है सकीना, घुट-घुटकर रह गया हूं मगर तुमने मना कर दिया था, आने का हौसला न हुआ तुम्हारे कदमों पर मैं अपना सब कुछ कुर्बान कर चुका हूं। वह घर मेरे लिए जेलखाने से बदतर है। मेरी हसीन बीवी मुझे संगमरमर की मूरत-सी लगती है, जिसमें दिल नहीं दर्द नहीं। तुम्हें पाकर मैं सब कुछ पा जाऊंगा।

सकीना जैसे घबरा गई। जहां उसने एक चुटकी आटे का सवाल किया था, वहां दाता ने ज्योनार का एक भरा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटे-से पात्र में इतनी जगह कहाँ है- उसकी समझ में नहीं आता कि उस विभूति को कैसे समेटे- आंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी। आंखें सजल हो गईं, हृदय उछलने लगा। सिर झुकाकर संकोच-भरे स्वर में बोली-बाबूजी, खुदा जानता है, मेरे दिल में तुम्हारी कितनी इज्जत और कितनी मुहब्बत है। मैं तो तुम्हारी एक निगाह पर कुर्बान हो जाती। तुमने तो भिखारिन को जैसे तीनों लोक का राज्य दे दिया लेकिन भिखारिन राज लेकर क्या करेगी- उसे तो एक टुकड़ा चाहिए। मुझे तुमने इस लायक समझा, यही मेरे लिए बहुत है। मैं अपने को इस लायक नहीं समझती। सोचो, मैं कौन हूं- एक गरीब मुसलमान औरत, जो मजदूरी करके अपनी जिंदगी बसर करती है। मुझमें न वह नगासत है, न वह सलीका, न वह इल्म। मैं सुखदादेवी के कदमों की बराबरी भी नहीं कर सकती। मेढ़की उड़कर ऊंचे दरख्त पर तो नहीं जा सकती। मेरे कारण आपकी रूसवाई हो, उसके पहले मैं जान दे दूंगी। मैं आपकी जिंदगी में दाग न लगाऊंगी।

ऐसे अवसरों पर हमारे विचार कुछ कवितामय हो जाते हैं। प्रेम की गहराई कविता की वस्तु है और साधारण बोल-चाल में व्यक्त नहीं हो सकती। सकीना जरा दम लेकर बोली- तुमने एक यतीम, गरीब लड़की को खाक से उठाकर आसमान पर पहुंचाया-अपने दिल में जगह दी-तो मैं भी जब तक जिऊंगी इस मुहब्बत के चिराग को अपने दिल के खून से रोशन रखूंगी।

अमर ने ठंडी सांस खींचकर कहा-इस खयाल से मुझे तस्कीन न होगा, सकीना यह चिराग हवा के झोंके से बुझ जाएगा और वहां दूसरा चिराग रोशन होगा। फिर तुम मुझे कब याद करोगी- यह मैं नहीं देख सकता। तुम इस खयाल को दिल से निकाल डालो कि मैं कोई बड़ा आदमी हूं और तुम बिल्कुल नाचीज हो। मैं अपना सब कुछ तुम्हारे कदमों पर निसार कर चुका और मैं तुम्हारे पुजारी के सिवा और कुछ नहीं। बेशक सुखदा तुमसे ज्यादा हसीन है लेकिन तुममें कुछ बात तो है, जिसने मुझे उधर से हटाकर तुम्हारे कदमों पर गिरा दिया। तुम किसी गैर की हो जाओ, यह मैं नहीं सह सकता। जिस दिन यह नौबत आएगी, तुम सुन लोगी कि अमर इस दुनिया में नहीं है अगर तुम्हें मेरी वफा के सबूत की जरूरत हो तो उसके लिए खून की यह बूंदें हाजिर हैं।

यह कहते हुए उसने जेब से छुरी निकाल ली। सकीना ने झपटकर छुरी उसके हाथ से छीन ली और मीठी झिड़की के साथ बोली-सबूत की जरूरत उन्हें होती है, जिन्हें यकीन न हो, जो कुछ बदले में चाहते हों। मैं तो सिर्फ तुम्हारी पूजा करना चाहती हूँ। देवता मुंह से कुछ नहीं बोलता तो क्या पुजारी के दिल में उसकी भक्ति कुछ कम होती है- मुहब्बत खुद अपना इनाम है। नहीं जानती जिंदगी किस तरफ जाएगी लेकिन जो कुछ भी हो, जिस्म चाहे किसी का हो जाए, यह दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा। इस मुहब्बत की गरज से पाक रखना चाहती हूँ। सिर्फ यह यकीन कि मैं तुम्हारी हूँ, मेरे लिए काफी है। मैं तुमसे सच कहती हूँ प्यारे, इस यकीन ने मेरे दिल को इतना मजबूत कर दिया है कि वह बड़ी-से-बड़ी मुसीबत भी हंसकर झेल सकता है। मैंने तुम्हें यहां आने से रोका था। तुम्हारी बदनामी के सिवा, मुझे अपनी बदनामी का भी खौफ था पर अब मुझे जरा भी खौफ नहीं है। मैं अपनी ही तरफ से बेफिक्र नहीं हूँ, तुम्हारी तरफ से भी बेफिक्र हूँ। मेरी जान रहते कोई तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।

अमर की इच्छा हुई कि सकीना को गले लगाकर प्रेम से छक जाए पर सकीना के ऊंचे प्रेमादर्श ने उसे शांत कर दिया। बोला-लेकिन तुम्हारी शादी तो होने जा रही है-

'मैं अब इंकार कर दूंगी।'

'बुढ़िया मान जाएगी?'

'मैं कह दूंगी-अगर तुमने मेरी शादी का नाम भी लिया तो मैं जहर खा लूंगी।'

'क्यों न इसी वक्त हम और तुम कहीं चले जाएं?'

'नहीं, वह जाहिरी मुहब्बत है। असली मुहब्बत वह है, जिसकी जुदाई में भी विसाल है, जहां जुदाई है ही नहीं, जो अपने प्यारे से एक हजार कोस पर होकर भी अपने को उसके गले से मिला हुआ देखती है।'

सहसा पठानिन ने द्वार खोला। अमर ने बात बनाई-मैं तो समझा था, तुम कबकी आ गई होगी। बीच में कहाँ रह गई-

बुढ़िया ने खट्टे मन से कहा-तुमने तो आज ऐसा रूखा जवाब दिया भैया, कि मैं रो पड़ी। तुम्हारा ही तो मुझे भरोसा था और तुम्हीं ने मुझे ऐसा जवाब दिया पर अल्लाह का गजल है, बहूजी ने मुझसे वादा किया-जितने रुपये चाहना ले जाना। वहीं देर हो गई। तुम मुझसे किसी बात पर नाराज तो नहीं हो, बेटा-

अमर ने उसकी दिलजोई की-नहीं अम्मां, आपसे भला क्या नाराज होता। उस वक्त दादा से एक बात पर झक-झक हो गई थी उसी का खुमार था। मैं बाद को खुद शमिऊदा हुआ और तुमसे मुआफी मांगने दौड़ा। सारी खता मुआफ करती हो-

बुढ़िया रोककर बोली-बेटा, तुम्हारे टुकड़ों पर तो जिंदगी कटी, तुमसे नाराज होकर खुदा को क्या मुंह दिखाऊंगी- इस खाल से तुम्हारे पांव की जूतियों बनें, तो भी दरेग न करूं।

'बस, मुझे तस्कीन हो गई अम्मां। इसीलिए आया था।'

अमर द्वार पर पहुंचा, तो सकीना ने द्वार बंद करते हुए कहा-कल जरूर आना।

अमर पर एक गैलन का नशा चढ़ गया-जरूर आऊंगा।

'मैं तुम्हारी राह देखती रहूंगी।'

'कोई चीज तुम्हारी नजर करूं, तो नाराज तो न होगी?'

'दिल से बढ़कर भी कोई नजर हो सकती है?'

'नजर के साथ कुछ शीरीनी होनी जरूरी है।'

'तुम जो कुछ दो, वह सिर-आंखों पर।'

अमर इस तरह अकड़ता हुआ जा रहा था गोया दुनिया की बादशाही पा गया है।

सकीना ने द्वार बंद करके दादी से कहा-तुम नाहक दौड़-धूप कर रही हो अम्मां। मैं शादी न करूंगी।

'तो क्या यों ही बैठी रहेगी?'

'हां, जब मेरी मर्जी होगी, तब कर लूंगी।'

'तो क्या मैं हमेशा बैठी रहूंगी?'

'हां, जब तक मेरी शादी न हो जाएगी, आप बैठी रहेंगी।'

'हंसी मत कर। मैं सब इंतजाम कर चुकी हूं।'

'नहीं अम्मां, मैं शादी न करूंगी और मुझे दिख करोगी तो जहर खा लूंगी। शादी के खयाल से मेरी ईह फना हो जाती है।'

'तुम्हें क्या हो गया सकीना?'

'मैं शादी नहीं करना चाहती, बस। जब तक कोई ऐसा आदमी न हो, जिसके साथ मुझे आराम से जिंदगी बसर होने का इत्मीनान हो मैं यह दर्द सर नहीं लेना चाहती। तुम मुझे ऐसे घर में डालने जा रही हो, जहां मेरी जिंदगी तलख हो जाएगी। शादी की मंशा यह नहीं है कि आदमी रो-रोकर दिन काटे।'

पठानिन ने अंगीठी के सामने बैठकर सिर पर हाथ रख लिया और सोचने लगी-लड़की कितनी बेशर्म है।

सकीना बाजरे की रोटियां मसूर की दाल के साथ खाकर, टूटी खाट पर लेटी और पुराने गटे हुए लिहाफ में सर्दी के मारे पांव सिकोड़ लिए, पर उसका हृदय आनंद से परिपूर्ण था। आज उसे जो विभूति मिली थी, उसके सामने संसार की संपदा तुच्छ थी, नगण्य थी।

पंद्रह

अमरकान्त के जीवन में एक नई स्फूर्ति का संचार होने लगा। अब तक घरवालों ने उसके हरेक काम की अवहेलना ही की थी। सभी उसकी लगाम खींचते रहते थे। घोड़े में न वह दम रहा, न वह उत्साह लेकिन अब एक प्राणी बढ़ावा देता था उसकी गर्दन पर हाथ फेरता था। जहां उपेक्षा, या अधिक-से-अधिक शुष्क उदासीनता थी, वहां अब एक रमणी का प्रोत्साहन था, जो पर्वतों को हिला सकता है, मुर्दों को जिला सकता है। उसकी साधन, जो बंधनों में पड़कर संकुचित हो गई थी, प्रेम का आश्रय पाकर प्रबल और उग्र हो गई है अपने अंदर ऐसी आत्मशक्ति उसने कभी न पाई थी। सकीना अपने प्रेमस्रोत से उसकी साधन को सींचती रहती है यह स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती पर उसका प्रेम उसऋषि का वरदान है जो आप भिक्षा मांगकर भी दूसरों पर विभूतियों की वर्षा करता है। अमर बिना किसी प्रयोजन के सकीना के पास नहीं जाता। उसमें वह उग्रण्डता भी नहीं रही। समय और अवसर देखकर काम करता है। जिन वृक्षों

की जड़ें गहरी होती हैं, उन्हें बार-बार सींचने की जरूरत नहीं होती। वह जमीन से ही आर्द्रता खींचकर बढ़ते और फलते-फूलते हैं। सकीना और अमर का प्रेम वही वृक्ष है। उसे सजग रखने के लिए बार-बार मिलने की जरूरत नहीं।

डिग्री की परीक्षा हुई पर अमरकान्त उसमें बैठा नहीं। अध्यापकों को विश्वास था, उसे छात्रवृत्ति मिलेगी। यहां तक कि डॉ. शान्तिकुमार ने भी उसे बहुत समझाया पर वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की जरूरत है, डिग्री की नहीं। हमारी डिग्री है-हमारा सेवा-भाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागृत नहीं हुई, तो कागज की डिग्री व्यर्थ है। उसे इस शिक्षा ही से घृणा हो गई थी। जब वह अपने अध्यापकों को ट्यूशन की गुलामी करते, स्वार्थ के लिए नाक रगड़ते, कम-से-कम करके अधिक-से-अधिक लाभ के लिए हाथ पसारते देखता, तो उसे घोर मानसिक वेदना होती थी, और इन्हीं महानुभावों के हाथ में राष्ट्र की बागडोर है। यही कौम के विधाता हैं। इन्हें इसकी परवाह नहीं कि भारत की जनता दो आने पैसों पर गुजर करती है। एक साधारण आदमी को साल-भर में पचास से ज्यादा नहीं मिलते। हमारे अध्यापकों को पचास रुपये रोज चाहिए। तब अमर को उस अतीत की याद आती, जब हमारे गुरुजन झोंपड़ों में रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्विक जीवन के आदर्श, निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम-से-कम लेकर अधिक-से-अधिक देते थे। वह वास्तव में देवता थे और एक यह अध्यापक हैं, जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य-कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी वही दंभ है, वही धान-मद है, वही अधिकार-मद है। हमारे विद्यालय क्या हैं, राज्य के विभाग हैं, और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंश हैं। ये खुद अंधकार में पड़े हुए हैं, प्रकाश क्या फैलाएंगे- वे आप अपने मनोविकारों के कैदी हैं, आप अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं, और अपने शिष्यों को भी उसी कैद और गुलामी में डालते हैं। अमर की युवक-कल्पना फिर अतीत का स्वप्न देखने लगती। परिस्थितियों को वह बिलकुल भूल जाता। उसके कल्पित राष्ट्र के कर्मचारी सेवा के पुतले होते, अध्यापक झोंपड़ी में रहने वाले बल्कलधारी, कंदमूल-फल-भोगी संन्यासी, जनता द्वेष और लोभ से रहित, न यह आए दिन के टंटे, न बखेड़े। इतनी अदालतों की जरूरत क्या- यह बड़े-बड़े महकमे किसलिए- ऐसा मालूम होता है, गरीबों की लाश नोचने वाले गिरोह का समूह है। जिसके पास जितनी ही बड़ी डिग्री है, उसका स्वार्थ भी उतना ही बढ़ा हुआ है। मानो लोभ और स्वार्थ ही विद्वता का लक्षण है गरीबों को रोटियां मयस्सर न हों, कपड़ों को तरसते हों, पर हमारे शिक्षित भाइयों को मोटर चाहिए, बंगला चाहिए, नौकरों की एक पलटन चाहिए। इस संसार को अगर मनुष्य ने रचा है तो अन्यायी है, ईश्वर ने रचा है तो उसे क्या कहें।

यही भावनाएं अमर के अंतस्थल में लहरों की भांति उठती रहती थीं।

वह प्रातःकाल उठकर शान्तिकुमार के सेवाश्रम में पहुंच जाता और दोपहर तक वहां लड़कों को पढ़ाता रहता। पाठशाला डॉक्टर साहब के बंगले में थी। नौ बजे तक डॉक्टर साहब भी पढ़ाते थे। फीस बिलकुल न ली जाती थी फिर भी लड़के बहुत कम आते थे। सरकारी स्कूलों में जहां फीस और जुर्माने और चंदों की भरमार रहती थी, लड़कों को बैठने की जगह न मिलती थी। यहां कोई झांकता भी न था। मुश्किल से दो-ढाई सौ लड़के आते थे। छोटे-छोटे भोले-भाले निष्कपट बालकों का कैसे स्वाभाविक विकास हो कैसे वे साहसी, संतोषी, सेवाशील नागरिक बन सकें, यही मुख्य उद्देश्य था। सौंदर्य-बोधा जो मानव-प्रकृति का प्रधान अंग है, कैसे दूषित वातावरण से अलग रहकर अपनी पूर्णता पाए, संघर्ष की जगह सहानुभूति का विकास कैसे हो, दोनों मित्र यही सोचते रहते थे। उनके पास शिक्षा की कोई बनी-बनाई प्रणाली न थी। उद्देश्य को सामने रखकर ही वह साधनों की व्यवस्था करते थे। आदर्श महापुरुषों के चरित्र, सेवा और त्याग की कथाएं, भक्ति और प्रेम के पद, यही शिक्षा के आधार थे। उनके दो सहयोगी और थे। एक आत्मानन्द

संन्यासी थे, जो संसार से विरक्त होकर सेवा में जीवन सार्थक करना चाहते थे, दूसरे एक संगीत के आचार्य थे, जिनका नाम था ब्रजनाथ। इन दोनों सहयोगियों के आ जाने से शाला की उपयोगिता बहुत बढ़ गई थी।

एक दिन अमर ने शान्तिकुमार से कहा-आप आखिर कब तक प्रो॰रेसरी करते चले जाएंगे- जिस संस्था को हम जड़ से काटना चाहते हैं, उसी से चिमटे रहना तो आपको शोभा नहीं देता ।

शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा-मैं खुद यही सोच रहा हूँ भई पर सोचता हूँ, रुपये कहां से आएंगे- कुछ खर्च नहीं है, तो भी पांच सौ में तो संदेह है ही नहीं।

'आप इसकी चिंता न कीजिए। कहीं-न-कहीं से रुपये आ ही जाएंगे। फिर रुपये की जरूरत क्या है?'

'मकान का किराया है, लड़कों के लिए किताबें हैं, और बीसों ही खर्च हैं। क्या-क्या गिनाऊं?'

'हम किसी वृक्ष के नीचे तो लड़कों को पढ़ा सकते हैं।'

'तुम आदर्श की धुन में व्यावहारिकता का बिलकुल विचार नहीं करते। कोरा आदर्शवाद खयाली पुलाव है।'

अमर ने चकित होकर कहा-मैं तो समझता था, आप भी आदर्शवादी हैं।

शान्तिकुमार ने मानो इस चोट को ढाल पर रोककर कहा-मेरे आदर्शवाद में व्यावहारिकता का भी स्थान है।

'इसका अर्थ यह है कि आप गुड़ खाते हैं, गुलगुले से परहेज करते हैं।'

'जब तक मुझे रुपये कहीं से मिलने न लगे, तुम्हीं सोचो, मैं किस आधार पर नौकरी का परित्याग कर दूँ- पाठशाला मैंने खोली है। इसके संचालन का दायित्व मुझ पर है। इसके बंद हो जाने पर मेरी बदनामी होगी। अगर तुम इसके संचालन का कोई स्थायी प्रबंध कर सकते हो, तो मैं आज इस्तीफा दे सकता हूँ लेकिन बिना किसी आधार के मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं इतना पक्का आदर्शवादी नहीं हूँ।'

अमरकान्त ने अभी सिध्दांत से समझौता करना न सीखा था। कार्यक्षेत्र में कुछ दिन रह जाने और संसार के कड़वे अनुभव हो जाने के बाद हमारी प्रकृति में जो ढीलापन आ जाता है, उस परिस्थिति में वह न पड़ा था। नवदीक्षितों को सिध्दांत में जो अटल भक्ति होती है वह उसमें भी थी। डॉक्टर साहब में उसे जो श्रद्धा थी, उसे जोर का धाक्का लगा। उसे मालूम हुआ कि यह केवल बातों के वीर हैं, कहते कुछ हैं करते कुछ हैं। जिसका खुले शब्दों में यह आशय है कि यह संसार को धोखा देते हैं। ऐसे मनुष्य के साथ वह कैसे सहयोग कर सकता है-

उसने जैसे धमकी दी-तो आप इस्तीफा नहीं दे सकते-

'उस वक्त तक नहीं, जब तक धान का कोई प्रबंध न हो।'

'तो ऐसी दशा में मैं यहां काम नहीं कर सकता।'

डॉक्टर साहब ने नम्रता से कहा-देखो अमरकान्त, मुझे संसार का तुमसे ज्यादा तजुर्बा है, मेरा इतना जीवन नए-नए परीक्षणों में ही गुजरा है। मैंने जो तत्त्व निकाला है, यह है कि हमारा जीवन समझौते पर टिका हुआ है। अभी तुम मुझे जो चाहे समझो पर एक समय आएगा, जब तुम्हारी आंखें खुलेंगी और तुम्हें मालूम होगा कि जीवन में यथार्थ का महत्त्व आदर्श से जौ-भर भी कम नहीं।

अमर ने जैसे आकाश में उड़ते हुए कहा-मैदान में मर जाना मैदान छोड़ देने से कहीं अच्छा है। और उसी वक्त वहां से चल दिया।

पहले सलीम से मुठभेड़ हुई। सलीम इस शाला को मदारी का तमाशा कहा करता था, जहां जादू की लकड़ी छुआ देने ही से मिट्टी सोना बन जाती है। वह एमए की तैयारी कर रहा था। उसकी अभिलाषा थी कोई अच्छा सरकारी पद पा जाए और चैन से रहे। सुधार और संगठन और राष्ट्रीय आंदोलन से उसे विशेष प्रेम न था। उसने यह खबर सुनी तो खुश होकर कहा-तुमने बहुत अच्छा किया, निकल आए। मैं डॉक्टर साहब को खूब जानता हूं, वह उन लोगों में हैं, जो दूसरों के घर में आग लगाकर अपना हाथ सेंकते हैं। कौम के नाम पर जान देते हैं, मगर जबान से।

सुखदा भी खुश हुई। अमर का शाला के पीछे पागल हो जाना उसे न सोहाता था। डॉक्टर साहब से उसे चिढ़ थी। वही अमर को उंगलियों पर नचा रहे हैं। उन्हीं के फेर में पड़कर अमर घर से उदासीन हो गया है।

पर जब संश्रुति समय अमर ने सकीना से जिक्र किया, तो उसने डॉक्टर का पक्ष लिया-मैं समझती हूं, डॉक्टर साहब का खयाल ठीक है। भूखे पेट खुदा की याद भी नहीं हो सकता। जिसके सिर रोजी की फिक्र सवार है, वह कौम की क्या खिदमत करेगा, और करेगा तो अमानत में खयानत करेगा। आदमी भूखा नहीं रह सकता। फिर मदरसे का खर्च भी तो है। माना कि दरख्तों के नीचे ही मदरसा लगे लेकिन वह बाग कहां है- कोई ऐसी जगह तो चाहिए ही जहां लड़के बैठकर पढ़ सकें। लड़कों को किताबें, कागज चाहिए, बैठने को गर्श चाहिए, डोल-रस्सी चाहिए। या तो चंदे से आए, या कोई कमाकर दे। सोचो, जो आदमी अपने उसूल के खिलाफ नौकरी करके एक काम की बुनियाद डालता है वह उसके लिए कितनी कुरबानी कर रहा है तुम अपने वक्त की कुरबानी करते हो। वह अपने जमीर तक की कुरबानी कर देता है। मैं तो ऐसे आदमी को कहीं ज्यादा इज्जत के लायक समझती हूं।

पठानिन ने कहा-तुम इस छोकरी की बातों में न आ जाना बेटा, जाकर घर का धंधा देखो, जिससे गृहस्थी का निर्वाह हो। यह सैलानीपन उन लोगों को चाहिए, जो घर के निखटू हैं। तुम्हें अल्लाह ने इज्जत दी है, मर्तबा दिया है, बाल-बच्चे दिए हैं। तुम इन खुरागतों में न पड़ो।

अमर को अब टोपियां बेचने से फुर्सत मिल गई थी। बुढ़िया को रेणुकादेवी के द्वारा चिकन का काम इतना ज्यादा मिल जाता था कि टोपियां कौन काढ़ता- सलीम के घर से कोई-न-कोई काम आता ही रहता था। उसके जरिए से और घरों से भी काफी काम मिल जाता था। सकीना के घर में कुछ खुशहाली नजर आती थी। घर की पुताई हो गई थी, द्वार पर नया परदा पड़ गया था, दो खाटें नई आ गई थीं, खाटों पर दरियां भी नई थीं, कई बरतन नए आ गए थे। कपड़े-लत्तो की भी कोई शिकायत न थी। उर्दू का एक अखबार भी खाट पर रखा हुआ था। पठानिन को अपने अच्छे दिनों में भी इससे ज्यादा समृद्धि न हुई थी। बस, उसे अगर कोई गम था, तो यह कि सकीना शादी करने पर राजी न होती थी।

अमर यहां से चला, तो अपनी भूल पर लज्जित था। सकीना के एक ही वाक्य ने उसके मन की सारी शंका शांत कर दी थी। डॉक्टर साहब से उसकी श्रद्धा फिर उतनी ही गहरी हो गई थी। सकीना की बुद्धिमत्ता, विचार-सौष्ठव, सूझ और निर्भीकता ने तो चकित और मुग्ध कर दिया था। सकीना उसका परिचय जितना ही गहरा होता था, उतना ही उसका असर भी गहरा होता था। सुखदा अपनी प्रतिभा और गरिमा से उस पर शासन करती थी। वह शासन उसे अप्रिय था। सकीना अपनी नम्रता और मधुरता से उस पर शासन करती थी। वह शासन उसे प्रिय था। सुखदा में अधिकार का गर्व था। सकीना में समर्पण की दीनता थी। सुखदा अपने को पति से बुद्धिमान् और कुशल समझती थी। सकीना

समझती थी, मैं इनके आगे क्या हूँ-

डॉक्टर साहब ने मुस्कराकर पूछा-तो तुम्हारा यही निश्चय है कि मैं इस्तीफा दे दूँ- वास्तव में मैंने इस्तीफा लिख रखा है और कल दे दूंगा। तुम्हारा सहयोग मैं नहीं खो सकता। मैं अकेला कुछ भी न कर सकूंगा। तुम्हारे जाने के बाद मैंने ठंडे दिल से सोचा तो मालूम हुआ, मैं व्यर्थ के मोह में पड़ा हुआ हूँ। स्वामी दयानन्द के पास क्या था जब उन्होंने आर्यसमाज की बुनियाद डाली-

अमरकान्त भी मुस्कराया-नहीं, मैंने ठंडे दिल से सोचा तो मालूम हुआ कि मैं गलती पर था। जब तक रुपये का कोई माकूल इंतजाम न हो जाए, आपको इस्तीफा देने की जरूरत नहीं।

डॉक्टर साहब ने विस्मय से कहा-तुम व्यंग्य कर रहे हो-

'नहीं, मैंने आपसे बेअदबी की थी उसे क्षमा कीजिए।'

सोलह

इधर कुछ दिनों से अमरकान्त म्युनिसिपल बोर्ड का मेंबर हो गया था। लाला समरकान्त का नगर में इतना प्रभाव था और जनता अमरकान्त को इतना चाहती थी कि उसे धोला भी नहीं खर्च करना पड़ा और वह चुन लिया गया। उसके मुकाबले में एक नामी वकील साहब खड़े थे। उन्हें उसके चौथाई वोट भी न मिले। सुखदा और लाला समरकान्त दोनों ही ने उसे मना किया था। दोनों ही उसे घर के कामों में फंसाना चाहते थे। अब वह पढ़ना छोड़ चुका था और लालाजी उसके माथे सारे भार डालकर खुद अलग हो जाना चाहते थे। इधर-उधर के कामों में पड़कर वह घर का काम क्या कर सकेगा। एक दिन घर में छोटा-मोटा तूफान आ गया। लालाजी और सुखदा एक तरफ थे, अमर दूसरी तरफ और नैना मध्यस्थ थी।

लालाजी ने तोंद पर हाथ फेरकर कहा-धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का। भोर से पाठशाला जाओ, सांझ हो तो कांग्रेस में बैठो अब यह नया रोग और बेसाहने को तैयार हो। घर में लगा दो आग।

सुखदा ने समर्थन किया-हां, अब तुम्हें घर का काम-धंधा देखना चाहिए या व्यर्थ के कामों में फंसना- अब तक तो यह था कि पढ़ रहे हैं। अब तो पढ़-लिख चुके हो। अब तुम्हें अपना घर संभालना चाहिए। इस तरह के काम तो वे उठावें, जिनके घर दो-चार आदमी हों। अकेले आदमी को घर से ही फुर्सत नहीं मिल सकती। ऊपर के काम कहां से करे-

अमर ने कहा-जिसे आप लोग रोग और ऊपर का काम और व्यर्थ का झंझट कह रहे हैं, मैं उसे घर के काम से कम जरूरी नहीं समझता। फिर जब तक आप हैं, मुझे क्या चिंता- और सच तो यह है कि मैं इस काम के लिए बनाया ही नहीं गया। आदमी उसी काम में सफल होता है, जिसमें उसका जी लगता हो। लेन-देन, बनिज-व्यापार में मेरा जी बिलकुल नहीं लगता। मुझे डर लगता है कि कहीं बना-बनाया काम बिगाड़ न बैठूं।

लालाजी को यह कथन सारहीन जान पड़ा। उनका पुत्र बनिज-व्यवसाय के काम में कच्चा हो, यह असंभव था। पोपले मुंह से पान चबाते हुए बोले-यह सब तुम्हारी मुट्ठमरदी है। और कुछ नहीं, मैं न होता, तो तुम क्या अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण न करते- तुम मुझी को पीसना चाहते हो। एक लड़के वह होते हैं, जो घर संभालकर बाप को छुट्टी देते हैं। एक तुम हो कि बाप की हड़डियां तक नहीं छोड़ना चाहते।

बात बढ़ने लगी। सुखदा ने मामला गर्म होते देखा, तो चुप हो गई। नैना उंगलियों से दोनों कान बंद

करके घर में आ बैठी। यहां दोनों पहलवानों में मल्लयु' होता रहा। युवक में चुस्ती थी, फुर्ती थी, लचक थी बूढ़े में पेंच था, दम था, रोब था। पुराना फिकैत बार-बार उसे दबाना चाहता था पर जवान पट्टा नीचे से सरक जाता था। कोई हाथ, कोई घात न चलता था।

अंत में लालाजी ने जामे से बाहर होकर कहा-तो बाबा, तुम अपने बाल-बच्चे लेकर अलग हो जाओ, मैं तुम्हारा बोझ नहीं संभाल सकता। इस घर में रहोगे, तो किराया और घर में जो कुछ खर्च पड़ेगा उसका आधा चुपके से निकालकर रख देना पड़ेगा। मैंने तुम्हारी जिंदगी भर का ठेका नहीं लिया है। घर को अपना समझो, तो तुम्हारा सब कुछ है। ऐसा नहीं समझते, तो यहां तुम्हारा कुछ नहीं है। जब मैं मर जाऊं, तो जो कुछ हो आकर ले लेना।

अमरकान्त पर बिजली-सी गिर पड़ी। जब तक बालक न हुआ था और वह घर से फटा-फटा रहता था, तब उसे आघात की शंका दो-एक बार हुई थी, पर बालक के जन्म के बाद से लालाजी के व्यवहार और स्वभाव में वात्सल्य की स्निग्धता आ गई थी। अमर को अब इस कठोर आघात की बिलकुल शंका न रही थी। लालाजी को जिस खिलौने की अभिलाषा थी, उन्हें वह खिलौना देकर अमर निश्चिंत हो गया था, पर आज उसे मालूम हुआ वह खिलौना माया की जंजीरों को तोड़ न सका।

पिता पुत्र की टालमटोल पर नाराज हो घुड़के-झिड़के, मुंह फुलाए, यह तो उसकी समझ में आता था, लेकिन पिता पुत्र से घर का किराया और रोटियों का खर्च मांगे, यह तो माया-लिप्सा की-निर्मम माया-लिप्सा की-पराकाष्ठा थी। इसका एक ही जवाब था कि वह आज ही सुखदा और उसके बालक को लेकर कहीं और जा टिके। और फिर पिता से कोई सरोकार न रखे। और अगर सुखदा आपत्ति करे तो उसे भी तिलांजलि दे दे।

उसने स्थिर भाव से कहा-अगर आपकी यही इच्छा है तो यही सही।

लालाजी ने कुछ खिसियाकर पूछा-सास के बल पर कूद रहे होंगे -

अमर ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा-दादा, आप घाव पर नमक न छिड़कें। जिस पिता ने जन्म दिया, जब उसके घर में मेरे लिए स्थान नहीं है, तो क्या आप समझते हैं मैं सास और ससुर की रोटियां तोड़ूंगा- आपकी दया से इतना नीच नहीं हूं। मैं मजदूरी कर सकता हूं और पसीने की कमाई खा सकता हूं। मैं किसी प्राणी से दया की भिक्षा मांफना अपने आत्म-सम्मान के लिए घातक समझता हूं। ईश्वर ने चाहा तो मैं आपको दिखा दूंगा कि मैं मजदूरी करके भी जनता की सेवा कर सकता हूं।

समरकान्त ने समझा, अभी इसका नशा नहीं उतरा। महीना गृहस्थी के चरखे में पड़ेगा तो आंखें खुल जाएंगी। चुपचाप बाहर चले गए। और अमर उसी वक्त एक मकान की तलाश करने चला।

उसके चले जाने के बाद लालाजी फिर अंदर गए। उन्हें आशा थी कि सुखदा उनके घाव पर मरहम रखेगी पर सुखदा उन्हें अपने द्वार के सामने देखकर भी बाहर न निकली। कोई पिता इतना कठोर हो सकता है, इसकी वह कल्पना भी न कर सकती थी। आखिर यह लाखों की संपत्ति किस काम आएगी - अमर घर के काम-काज से अलग रहता है, यह सुखदा को खुद बुरा मालूम होता था। लालाजी इसके लिए पुत्र को ताड़ना देते हैं, यह भी उचित ही था लेकिन घर का और भोजन का खर्च मांफना यह तो नाता ही तोड़ना था। तो जब वह नाता तोड़ते हैं तो वह रोटियों के लिए उनकी खुशामद न करेगी। घर में आग लग जाए, उससे कोई मतलब नहीं। उसने अपने सारे गहने उतार डाले। आखिर यह गहने भी तो लालाजी ही ने दिए हैं। मां की दी हुई चीजें भी उतार फेंकी। मां ने भी जो कुछ दिया था, दहेज की पुरौती ही में तो

दिया था। उसे भी लालाजी ने अपनी बही में टांक लिया होगा। वह इस घर से केवल एक साड़ी पहनकर जाएगी। भगवान् उसके मुन्ने को कुशल से रखें, उसे किसी की क्या परवाह यह अमूल्य रत्न तो कोई उससे छीन नहीं सकता।

अमर के प्रति इस समय उसके मन में सच्ची सहानुभूति उत्पन्न हुई। आखिर म्युनिसिपैलिटी के लिए खड़े होने में क्या बुराई थी- मान और प्रतिष्ठा किसे प्यारी नहीं होती - इसी मेंबरी के लिए लोग लाखों खर्च करते हैं। क्या वहां जितने मेंबर हैं, वह सब घर के निखट्टू ही हैं - कुछ नाम करने की, कुछ काम करने की लालसा प्राणी मात्र को होती है। अगर वह स्वार्थ साधन पर अपना समर्पण नहीं करते, तो कोई ऐसा काम नहीं करते, जिसका यह दंड दिया जाए। कोई दूसरा आदमी पुत्र के इस अनुराग पर अपने को धान्य मानता, अपने भाग्य को सराहता।

सहसा अमर ने आकर कहा-तुमने आज दादा की बातें सुन लीं - अब क्या सलाह है -

'सलाह क्या है, आज ही यहां से विदा हो जाना चाहिए। यह फटकार पाने के बाद तो मैं इस घर में पानी पीना हARAM समझती हूं। कोई घर ठीक कर लो।'

'वह तो ठीक कर आया। छोटा-सा मकान है, साफ-सुथरा, नीचीबाग में। दस रुपये किराया है।'

'मैं भी तैयार हूं।'

'तो एक तांगा लाऊं ?'

'कोई जरूरत नहीं। पांव-पांव चलेंगे।'

'संदूक, बिछावन यह सब तो ले चलना ही पड़ेगा ?'

'इस घर में हमारा कुछ नहीं है। मैंने तो सब गहने भी उतार दिए। मजदूरों की स्त्रियां गहने पहनकर नहीं बैठा करतीं।'

स्त्री कितनी अभिमानिनी है, यह देखकर अमरकान्त चकित हो गया। बोला-लेकिन गहने तो तुम्हारे हैं। उन पर किसी का दावा नहीं है। फिर आधो से ज्यादा तो तुम अपने साथ लाई थीं।

'अम्मां ने जो कुछ दिया, दहेज की पुरौती में दिया। लालाजी ने जो कुछ दिया, वह यह समझकर दिया कि घर ही में तो है। एक-एक चीज उनकी बही में दर्ज है। मैं गहनों को भी दया की भिक्षा समझती हूं। अब तो हमारा उसी चीज पर दावा होगा, जो हम अपनी कमाई से बनवाएंगे।'

अमर गहरी चिंता में डूब गया। यह तो इस तरह नाता तोड़ रही है कि एक तार भी बाकी न रहे। गहने औरतों को कितने प्रिय होते हैं, यह वह जानता था। पुत्र और पति के बाद अगर उन्हें किसी वस्तु से प्रेम होता है, तो वह गहने हैं। कभी-कभी तो गहनों के लिए वह पुत्र और पति से भी तन बैठती हैं। अभी घाव ताजा है, कसक नहीं है। दो-चार दिन के बाद यह वितर्षणा जलन और असंतोष के रूप में प्रकट होगी। फिर तो बात-बात पर ताने मिलेंगे, बात-बात पर भाग्य का रोना होगा। घर में रहना मुश्किल हो जाएगा।

बोला-मैं तो यह सलाह दूंगा सुखदा, जो चीज अपनी है, उसे अपने साथ ले चलने में मैं कोई बुराई नहीं समझता।

सुखदा ने पति को सगर्व दृष्टि से देखकर कहा-तुम समझते होगे, मैं गहनों के लिए कोने में बैठकर रोऊंगी और अपने भाग्य को कोसूंगी। स्त्रियां अवसर पड़ने पर कितना त्याग कर सकती हैं, यह तुम नहीं जानते। मैं इस फटकार के बाद इन गहनों की ओर ताकना भी पाप समझती हूं, इन्हें पहनना तो दूसरी बात है। अगर तुम डरते हो कि मैं

कल ही से तुम्हारा सिर खाने लगूंगी, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अगर गहनों का नाम मेरी जबान पर आए, तो जबान काट लेना। मैं यह भी कहे देती हूँ कि मैं तुम्हारे भरोसे पर नहीं जा रही हूँ। अपनी गुजर भर को आप कमा लूंगी। रोटियों में ज्यादा खर्च नहीं होता। खर्च होता है आडंबर में। एक बार अमीरी की शान छोड़ दो, फिर चार आने पैसे में काम चलता है।

नैना भाभी को गहने उतारकर रखते देख चुकी थी। उसके प्राण निकले जा रहे थे कि अकेली इस घर में कैसे रहेगी- बच्चे के बिना तो वह घड़ी भर भी नहीं रह सकती। उसे पिता, भाई, भावज सभी पर क्रोध आ रहा था। दादा को क्या सूझी- इतना धान तो घर में भरा हुआ है, वह क्या होगा- भैया ही घड़ी भर दूकान पर बैठ जाते, तो क्या बिगड़ जाता था- भाभी को भी न जाने क्या सनक सवार हो गई। वह न जाती, तो भैया दो-चार दिन में फिर लौट ही आते। भाभी के साथ वह भी चली जाए, तो दादा को भोजन कौन देगा- किसी और के हाथ का बनाया खाते भी तो नहीं। वह भाभी को समझाना चाहती थी पर कैसे समझाए- यह दोनों तो उसकी तरफ आंखें उठाकर देखते भी नहीं। भैया ने अभी से आंखें फेर लीं। बच्चा भी कैसा खुश है- नैना के दुःख का पारावार नहीं है।

उसने जाकर बाप से कहा-दादा, भाभी तो सब गहने उतारकर रखे देती हैं।

लालाजी चिंतित थे। कुछ बोले नहीं। शायद सुना ही नहीं।

नैना ने जरा और जोर से कहा-भाभी अपने सब गहने उतारकर रखे देती हैं।

लालाजी ने अनमने भाव से सिर उठाकर कहा-गहने क्या कर रही हैं-

उतार-उतारकर रखे देती हैं।

'तो मैं क्या करूं?'

'तुम जाकर उनसे कहते क्यों नहीं?'

'वह नहीं पहनना चाहती, तो मैं क्या करूं।'

'तुम्हीं ने उनसे कहा होगा, गहने मत ले जाना। क्या तुम उनके ब्याह के गहने भी ले लोगे?'

'हां, मैं सब ले लूंगा। इस घर में उसका कुछ भी नहीं है।'

'यह तुम्हारा अन्याय है।'

'जा अंदर बैठ, बक-बक मत कर।'

'तुम जाकर उन्हें समझाते क्यों नहीं?'

'तुझे बड़ा दर्द आ रहा है, तू ही क्यों नहीं समझाती?'

'मैं कौन होती हूँ समझाने वाली- तुम अपने गहने ले रहे हो, तो वह मेरे कहने से क्यों पहनने लगीं?'

दोनों कुछ देर तक चुपचाप रहे। फिर नैना ने कहा-मुझसे यह अन्याय नहीं देखा जाता। गहने उनके हैं। ब्याह के गहने तुम उनसे नहीं ले सकते।

'तू यह कानून कब से जान गई।'

'न्याय क्या है और अन्याय क्या है, यह सिखाना नहीं पड़ता। बच्चे को भी बेकसूर सजा दो तो वह चुपचाप न सहेगा।'

'मालूम होता है, भाई से यही विद्या सीखती है।'

'भाई से अगर न्याय-अन्याय का ज्ञान सीखती हूं, तो कोई बुराई नहीं।'

'अच्छा भाई, सिर मत खा, कह दिया अंदर जा। मैं किसी को मनाने-समझाने नहीं जाता। मेरा घर है, इसकी सारी संपदा मेरी है। मैंने इसके लिए जान खपाई है। किसी को क्यों ले जाने दूं?'

नैना ने सहसा सिर झुका लिया और जैसे दिल पर जोर डालकर कहा-तो फिर मैं भी भाभी के साथ चली जाऊंगी।

लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई-चली जा, मैं नहीं रोकता। ऐसी संतान से बेसंतान रहना ही अच्छा। खाली कर दो मेरा घर, आज ही खाली कर दो। खूब टांगें फैलाकर सोऊंगा। कोई चिंता तो न होगी। आज यह नहीं है, आज वह नहीं है, यह तो न सुनना पड़ेगा। तुम्हारे रहने से कौन सुख था मुझे-

नैना लाल आंखें किए सुखदा से जाकर बोली-भाभी, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

सुखदा ने अविश्वास के स्वर में कहा-हमारे साथ हमारा तो अभी कहीं घर-द्वार नहीं है। न पास पैसे हैं, न बरतन-भांडे, न नौकर-चाकर। हमारे साथ कैसे चलोगी- इस महल में कौन रहेगा-

नैना की आंखें भर आईं-जब तुम्हीं जा रही हो, तो मेरा यहां क्या है-

पगली सिल्लो आई और ठट्ठा मारकर बोली-तुम सब जने चले जाओ, अब मैं इस घर की रानी बनूंगी। इस कमरे में इसी पलंग पर मजे से सोऊंगी। कोई भिखारी द्वार पर आएगा तो झाड़ू लेकर दौड़ूंगी।

अमर पगली के दिल की बात समझ रहा था पर इतना बड़ा खटला लेकर कैसे जाए घर में एक ही तो रहने लायक कोठरी है। वहां नैना कहां रहेगी और यह पगली तो जीना मुहाल कर देगी। नैना से बोला-तुम हमारे साथ चलोगी, तो दादा का खाना कौन बनाएगा, नैना- फिर हम कहीं दूर तो नहीं जाते। मैं वादा करता हूं, एक बार रोज तुमसे मिलने आया करूंगा। तुम और सिल्लो दोनों रहो। हमें जाने दो।

नैना रो पड़ी-तुम्हारे बिना मैं इस घर में कैसे रहूंगी भैया, सोचो दिन-भर पड़े-पड़े क्या करूंगी- मुझसे तो छिन भर भी न रहा जाएगा। मुझे की याद कर-करके रोया करूंगी। देखते हो भाभी, मेरी ओर ताकता भी नहीं।

अमर ने कहा-तो मुझे को छोड़ जाऊं- तेरे ही पास रहेगा।

सुखदा ने विरोध किया-वाह कैसी बात कर रहे हो- रो-रोकर जान दे देगा। फिर मेरा जी भी तो न मानेगा।

शाम को तीनों आदमी घर से निकले। पीछे-पीछे सिल्लो भी हंसती हुई चली जाती थी। सामने के दूकानदार ने समझा, कहीं नेवते जाती हैं पर क्या बात है, किसी के देह पर छल्ला भी नहीं न चादर, न धाराऊ कपड़े।

लाला समरकान्त अपने कमरे में बैठे हुक्का पी रहे थे। आंखें उठाकर भी न देखा। एक घंटे के बाद वह उठे, घर में ताला डाल दिया और फिर कमरे में आकर लेट रहे।

एक दूकानदार ने आकर पूछा-भैया और बीवी कहां गए, लालाजी-

लालाजी ने मुंह फेरकर जवाब दिया-मुझे नहीं मालूम-मैंने सबको घर से निकाल दिया। मैंने धान इसलिए नहीं कमाया

है कि लोग मौज उड़ाएं। जो धान को मिट्टी समझे, उसे धान का मूल्य सीखना होगा। मैं आज भी अट्टारह घंटे रोज काम करता हूं। इसलिए नहीं कि लड़के धान को मिट्टी समझें। मेरी ही गोद के लड़के मुझे ही आंखें दिखाएं। धान का धान दूं, ऊपर से धौंस भी सुनूं। बस, जबान न खोलूं, चाहे कोई घर में आग लगा दे। घर का काम चूल्हे में जाए, तुम्हें सभाओं में, जलसों में आनंद आता है, तो जाओ, जलसों से अपना निबाह भी करो। ऐसों के लिए मेरा घर नहीं। लड़का वही है, जो कहना सुने। जब लड़का अपने मन का हो गया तो कैसा लड़का।

रेणुका को ज्योंही सल्लो ने खबर दी, वह बदहवास दौड़ी आई, मानो बेटी और दामाद पर कोई बड़ा संकट आ गया है। वह क्या गैर थीं, उनसे क्या कोई नाता ही नहीं- उनको खबर तक न दी और अलग मकान ले लिया। वाह यह भी कोई लड़कों का खेल है। दोनों बिलह्वे। छोकरी तो ऐसी न थी, पर लौंडे के साथ उसका भी सिर फिर गया।

रात के आठ बज गए थे। हवा अभी तक गर्म थी। आकाश के तारे गर्द से धांंधाले हो रहे थे। रेणुका पहुंचीं, तो तीनों निकलुए कोठे की एक चारपाई पर बराबर छत पर मन मारे बैठे थे। सारे घर में अंधकार छाया हुआ था। बेचारों पर गृहस्थी की नई विपत्ति पड़ी थी। पास एक पैसा नहीं। कुछ न सूझता था, क्या करें।

अमर ने उन्हें देखते ही कहा-अरे तुम्हें कैसे खबर मिल गई अम्मांजी अच्छा, इस चुड़ैल सिल्लो ने जाकर कहा होगा। कहां है अभी खबर लेता हूं।

रेणुका अंधोरे में जीने पर चढ़ने से हांग गई थीं। चादर उतारती हुई बोलीं-मैं क्या दुश्मन थी कि मुझसे उसने कह दिया तो बुराई की- क्या मेरा घर न था, या मेरे घर रोटियां न थीं- मैं यहां एक क्षण-भर तो रहने न दूंगी। वहां पहाड़-सा घर पड़ा हुआ है, यहां तुम सब-के-सब एक बिल में घुसे बैठे हो। उठो अभी। बच्चा मारे गर्मी के कुम्हला गया होगा। यहां खाटें भी तो नहीं हैं और इतनी-सी जगह में सोओगे कैसे- तू तो ऐसी न थी सुखदा, तुझे क्या हो गया- बड़े-बूढ़े दो बात कहें, तो गम खाना होता है कि घर से निकल खड़े होते हैं- क्या इनके साथ तेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई-

सुखदा ने सारा वृत्तांत कह सुनाया और इस ढंग से कि रेणुका को भी लाला समरकान्त की ही ज्यादाती मालूम हुई। उन्हें अपने धान का घमंड है तो उसे लिए बैठे रहें। मरने लगे, तो साथ लेते जाएं।

अमर ने कहा-दादा को यह खयाल न होगा कि ये सब घर से चले जाएंगे।

सुखदा का क्रोध इतनी जल्द शांत होने वाला न था। बोली-चलो, उन्होंने साफ कहा, यहां तुम्हारा कुछ नहीं है। क्या वह एक दफे भी आकर न कह सकते थे, तुम लोग कहां जा रहे हो- हम घर से निकले। वह कमरे में बैठे टुकुर-टुकुर देखा किए। बच्चे पर भी उन्हें दया न आई। जब इतना घमंड है, तो यहां क्या आदमी ही नहीं हैं- वह अपना महल लेकर रहें, हम अपनी मेहनत-मजूरी कर लेंगे। ऐसा लोभी आदमी तुमने कभी देखा था अम्मां, बीवी गई, तो इन्हें भी डांट बतलाई। बेचारी रोती चली आई।

रेणुका ने नैना का हाथ पकड़कर कहा-अच्छा, जो हुआ अच्छा ही हुआ, चलो देर हो रही है। मैं महाराजिन से भोजन को कह आई हूं। खाटें भी निकलवा आई हूं। लाला का घर न उजड़ता, तो मेरा कैसे बसता-

नीचे प्रकाश हुआ। सिल्लो ने कड़वे तेल का चिराग जला दिया था। रेणुका को यहां पहुंचाकर बाजार दौड़ी गई। चिराग, तेल और एक झाड़ू लाई। चिराग जलाकर घर में झाड़ू लगा रही थी।

सुखदा ने बच्चे को रेणुका की गोद में देकर कहा-आज तो क्षमा करो अम्मां, फिर आगे देखा जाएगा। लालाजी को यह

कहने का मौका क्यों दें कि आखिर ससुराल भागा। उन्होंने पहले ही तुम्हारे घर का द्वार बंद कर दिया है। हमें दो-चार दिन यहां रहने दो, फिर तुम्हारे पास चले जाएंगे। जरा हम देख तो लें, अपने बूते पर रह सकते हैं या नहीं-

अमर की नानी मर रही थी। अपने लिए तो उसे चिंता न थी। सलीम या डॉक्टर के यहां चला जाएगा। यहां सुखदा और नैना दोनों बे-खाट के कैसे सोएंगी- कल ही कहां से धान बरस जाएगा- मगर सुखदा की बात की बात कैसे काटे।

रेणुका ने बच्चे की मुच्छियां लेकर कहा-भला, देख लेना जब मैं मर जाऊं। अभी तो मैं जीती ही हूं। वह घर भी तो तेरा ही है। चल जल्दी कर।

सुखदा ने दृढ़ता से कहा-अम्मां, जब तक हम अपनी कमाई से अपना निबाह न करने लगेंगे, तब तक तुम्हारे यहां न जाएंगे जाएंगे पर मेहमान की तरह। घंटे-दो घंटे बैठे और चले आए।

रेणुका ने अमर से अपील की-देखते हो बेटा, इसकी बातें। यह मुझे भी गैर समझती है।

सुखदा ने व्यथित कंठ से कहा-अम्मां, बुरा न मानना आज दादाजी का बर्ताव देखकर मुझे मालूम हो गया कि धानियों को अपना धान कितना प्यारा होता है- कौन जाने कभी तुम्हारे मन में भी ऐसे ही भाव पैदा हों तो ऐसा अवसर आने ही क्यों दिया जाए- जब हम मेहमान की तरह...

अमर ने बात काटी। रेणुका के कोमल हृदय पर कितना कठोर आघात था।

'तुम्हारे जाने में तो ऐसा कोई हर्ज नहीं है सुखदा तुम्हें बड़ा कष्ट होगा।'

सुखदा ने तीव्र स्वर में कहा-तो क्या तुम्हीं कष्ट सह सकते हो- मैं नहीं सह सकती- तुम अगर कष्ट से डरते हो, तो जाओ। मैं तो अभी कहीं नहीं जाने की।

नतीजा यह हुआ कि रेणुका ने सिल्लो को घर भेजकर अपने बिस्तर मंगवाए। भोजन पक चुका था इसलिए भोजन भी मंगवा लिया गया। छत पर झाड़ू दी गई और जैसे धर्मशाला में यात्री ठहरते हैं, उसी तरह इन लोगों ने भोजन करके रात काटी। बीच-बीच में मजाक भी हो जाता था। विपत्ति में जो चारों ओर अंधकार दीखता है, वह हाल न था। अंधकार था, पर ऊषाकाल का। विपत्ति थी पर सिर पर नहीं, पैरों के नीचे।

दूसरे दिन सवेरे रेणुका घर चली गई। उन्होंने फिर सबको साथ ले चलने के लिए जोर लगाया पर सुखदा राजी न हुई। कपड़े-लत्तो, बरतन-भांडे, खाट-खटोली कोई चीज लेने पर राजी न हुई। यहां तक रेणुका नाराज हो गई। और अमरकान्त को भी बुरा मालूम हुआ। वह इस अभाव में भी उस पर शासन कर रही थी।

रेणुका के जाने के बाद अमरकान्त सोचने लगा-रुपये-पैसे का कैसे प्रबंध हो- यह समय प्री पाठशाला का था। वहां जाना लाजमी था। सुखदा अभी सवेरे की नींद में मग्न थी, और नैना चिंतातुर बैठी सोच रही थी-कैसे घर का काम चलेगा- उस वक्त अमर पाठशाला चला गया पर आज वहां उसका जी बिलकुल न लगा। कभी पिता पर क्रोध आता, कभी सुखदा पर, कभी अपने आप पर। उसने अपने निर्वासन के विषय में डॉक्टर साहब से कुछ न कहा। वह किसी की सहानुभूति न चाहता था। आज अपने मित्रों में से वह किसी के पास न गया। उसे भय हुआ, लोग उसका हाल-सुनकर दिल में यही समझेंगे। मैं उनसे कुछ मदद चाहता हूं।

दस बजे घर लौटा, तो देखा सिल्लो आटा गूंथ रही है और नैना चौंके में बैठी तरकारी पका रही है। पूछने की हिम्मत न पड़ी, पैसे कहां से आए- नैना ने आप ही कहा-सुनते हो भैया, आज सिल्लो ने हमारी दावत की है। लकड़ी, घी, आटा,

दाल सब बाजार से लाई है। बर्तन भी किसी अपने जान-पहचान के घर से मांग लाई है।

सिल्लो बोल उठी-मैं दावत नहीं करती हूं। मैं अपने पैसे जोड़कर ले लूंगी।

नैना हंसती हुई बोली-यह बड़ी देर से मुझसे लड़ रही है। यह कहती है-मैं पैसे ले लूंगी मैं कहती हूं-तू तो दावत कर रही है। बताओ भैया, दावत ही तो कर रही है-

'हां और क्या दावत तो है ही।'

अमरकान्त पगली सिल्लो के मन का भाव ताड़ गया। वह समझती है, अगर यह न कहूंगी, तो शायद यह लोग उसके रुपयों की लाई हुई चीज लेने से इंकार कर देंगे।

सिल्लो का पोपला मुंह खिल गया। जैसे वह अपनी दृष्टि में कुछ ऊंची हो गई है, जैसे उसका जीवन सार्थक हो गया है। उसकी रूपहीनता और शुष्कता मानो माधुर्य में नहा उठी। उसने हाथ धोकर अमरकान्त के लिए लोटे का पानी रख दिया, तो पांव जमीन पर न पड़ते थे।

अमर को अभी तक आशा थी कि दादा शायद सुखदा और नैना को बुला लेंगे पर जब अब कोई बुलाने न आया और न वह खुद आए तो उसका मन खक्रा हो गया।

उसने जल्दी से स्नान किया पर याद आया, धोती तो है ही नहीं। गले की चादर पहन ली, भोजन किया और कुछ कमाने की टोह में निकला।

सुखदा ने मुंह लटकाकर पूछा-तुम तो ऐसे निश्चित होकर बैठ रहे, जैसे यहां सारा इंतजाम किए जा रहे हो। यहां लाकर बिठाना ही जानते हो। सुबह से गायब हुए तो दोपहर को लौटे। किसी से कुछ काम-धान्धों के लिए कहा, या खुदा छप्पर गाड़कर देगा- यों काम न चलेगा, समझ गए-

चौबीस घंटे के अंदर सुखदा के मनोभावों में यह परिवर्तन देखकर अमर का मन उदास हो गया। कल कितने बढ़-बढ़कर बातें कर रही थी, आज शायद पछता रही है कि क्यों घर से निकले।

ईखे स्वर में बोला-अभी तो किसी से कुछ नहीं कहा। अब जाता हूं किसी काम की तलाश में।

'मैं जरा जज साहब की स्त्री के पास जाऊंगी। उनसे किसी काम को कहूंगी। उन दिनों तो मेरा बड़ा आदर करती थीं। अब का हाल नहीं जानती।'

अमर कुछ नहीं बोला-यह मालूम हो गया कि उसकी कठिन परीक्षा के दिन आ गए।

अमरकान्त को बाजार के सभी लोग जानते थे। उसने एक खददर की दूकान से कमीशन पर बेचने के लिए कई थान खददर की साड़ियां, जंपर, कुर्ते, चादरें आदि ले लीं और उन्हें खुद अपनी पीठ पर लादकर बेचने चला।

दूकानदार ने कहा-यह क्या करते हो बाबू, एक मजूर ले लो। लोग क्या कहेंगे- भला लगता है।

अमर के अंतःकरण में क्रांति का तूफान उठ रहा था। उसका बस चलता तो आज धानवानों का अंत कर देता, जो संसार को नरक बनाए हुए हैं। वह बोझ उठाकर दिखाना चाहता था, मैं मजूरी करके निबाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हूं कि हराम की कमाई खाऊं। तुम सब मोटी तोंद वाले हरामखोर हो, पक्के हरामखोर हो। तुम मुझे नीच समझते हो इसलिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हूं। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज्यादा

लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो और शरमाते जरा भी नहीं- उलटे और घमंड करते हो-

इस वक्त अगर कोई धानी अमरकान्त को छेड़ देता, तो उसकी शामत ही आ जाती। वह सिर से पांव तक बाईद बना हुआ था, बिजली का जिंदा तार।

सत्रह

अमरकान्त खादी बेच रहा है। तीन बजे होंगे, लू चल रही है, बगूले उठ रहे हैं। दूकानदार दूकानों पर सो रहे हैं, रईस महलों में सो रहे हैं मजूर पेड़ों के नीचे सो रहे हैं और अमर खादी का गड्ढा लादे, पसीने में तर, चेहरा सुर्ख, आंखें लाल, गली-गली घूमता फिरता है।

एक वकील साहब ने खस का परदा उठाकर देखा और बोले-अरे यार, यह क्या गजब करते हो, म्युनिसिपल कमिशनरी की तो लाज रखते, सारा भ्रष्ट कर दिया। क्या कोई मजूर नहीं मिलता था-

अमर ने गड्ढा लिए-लिए कहा-मजूरी करने से म्युनिसिपल कमिशनरी की शान में बढ़ा नहीं लगता। बक्रा लगता है-धांधाले-धाड़ी की कमाई खाने से।

'वहां धांधाले-धाड़ी की कमाई खाने वाला कौन है, भाई- क्या वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर, सेठ-साहूकार धांधाले-धाड़ी की कमाई खाते हैं?'

'यह उनके दिल से पूछिए। मैं किसी को क्यों बुरा कहूं?'

'आखिर आपने कुछ समझकर ही तो फिकरा चुस्त किया?'

'अगर आप मुझसे पूछना ही चाहते हैं तो मैं कह सकता हूं, हां, खाते हैं। एक आदमी दस रुपये में गुजर करता है, दूसरे को दस हजार क्यों चाहिए- यह धांधाली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक जनता की आंखें बंद हैं। क्षमा कीजिएगा, एक आदमी पंखे की हवा खाए और खसखाने में बैठे, और दूसरा आदमी दोपहर की धूप में तपे, यह न न्याय है, न धर्म-यह धांधाली है।'

'छोटे-बड़े तो भाई साहब हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे। सबको आप बराबर नहीं कर सकते।'

'मैं दुनिया का ठेका नहीं लेता अगर न्याय अच्छी चीज है तो वह इसलिए खराब नहीं हो सकती कि लोग उसका व्यवहार नहीं करते।'

'इसका आशय यह है कि आप व्यक्तिवाद को नहीं मानते, समष्टिवाद के कायल हैं।'

'मैं किसी वादे का कायल नहीं। केवल न्यायवाद का पुजारी हूं।'

'तो अपने पिताजी से बिल्कुल अलग हो गए?'

'पिताजी ने मेरी जिंदगी भर का ठेका नहीं लिया।'

'अच्छा लाइए, देखें आपके पास क्या-क्या चीजें हैं?'

अमरकान्त ने इन महाशय के हाथ दस रुपये के कपड़े बेचे।

अमर आजकल बड़ा क्रोधी, बड़ा कटुभाषी, बड़ा उग्र हो गया है। हरदम उसकी तलवार म्यान से बाहर रहती है। बात-

बात पर उलझता है। फिर भी उसकी बिक्री अच्छी होती है। रुपया-सवा रुपया रोज मिल जाता है।

त्यागी दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो त्याग में आनंद मानते हैं, जिनकी आत्मा को त्याग में संतोष और पूर्णता का अनुभव होता है, जिनके त्याग में उदारता और सौजन्य है। दूसरे वह, जो दिलजले त्यागी होते हैं, जिनका त्याग अपनी परिस्थितियों से विद्रोह-मात्र है, जो अपने न्यायपथ पर चलने का तावान संसार से लेते हैं, जो खुद जलते हैं इसलिए दूसरों को भी जलाते हैं। अमर इसी तरह का त्यागी था।

स्वस्थ आदमी अगर नीम की पत्ता चबाता है, तो अपने स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए वह शौक से पत्तियां तोड़ लाता है, शौक से पीसता और शौक से पीता है, पर रोगी वही पत्तियां पीता है तो नाक सिकोड़कर, मुंह बनाकर, झुंझलाकर और अपनी तकदीर को रोककर।

सुखदा जज साहब की पत्नी की सिफारिश से बालिका-विद्यालय में पचास रुपये पर नौकर हो गई है। अमर दिल खोलकर तो कुछ कह नहीं सकता, पर मन में जलता रहता है। घर का सारा काम, बच्चे को संभालना, रसोई पकाना, जरूरी चीज बाजार से मंगाना-यह सब उसके मत्थे है। सुखदा घर के कामों के नगीच नहीं जाती। अमर आम कहता है, तो सुखदा इमली कहती है। दोनों में हमेशा खट-पट होती रहती है। सुखदा इस दरिद्रावस्था में भी उस पर शासन कर रही है। अमर कहता है, आधा सेर दूध काफी है सुखदा कहती है, सेर भर आएगा, और सेर भर ही मंगाती है। वह खुद दूध नहीं पीता, इस पर भी रोज लड़ाई होती है। वह कहता है, गरीब हैं, मजूर हैं, हमें मजूरों की तरह रहना चाहिए। वह कहती है, हम मजूर नहीं हैं, न मजूरों की तरह रहेंगे। अमर उसको अपने आत्मविकास में बाधाक समझता है और उस बाधा को हटा न सकने के कारण भीतर-ही-भीतर कुढ़ता है।

एक दिन बच्चे को खांसी आने लगी। अमर बच्चे को लेकर एक होमियोपैथ के पास जाने को तैयार हुआ। सुखदा ने कहा- बच्चे को मत ले जाओ, हवा लगेगी। डॉक्टर को बुला लाओ। फीस ही तो लेगा।

अमर को मजबूर होकर डॉक्टर बुलाना पड़ा। तीसरे दिन बच्चा अच्छा हो गया।

एक दिन खबर मिली, लाला समरकान्त को ज्वर आ गया है। अमरकान्त इस महीने भर में एक बार भी घर नहीं गया था। यह खबर सुनकर भी न गया। वह मरें या जिएं, उसे क्या करना है- उन्हें अपना धान प्यारा है, उसे छाती से लगाए रखें। और उन्हें किसी की जरूरत ही क्या-

पर सुखदा से न रहा गया। वह उसी वक्त नैना को साथ लेकर चल दी। अमर मन में जल-भुनकर रह गया।

समरकान्त घर वालों के सिवा और किसी के हाथ का भोजन न ग्रहण करते थे। कई दिनों तो उन्होंने दूध पर काटे, फिर कई दिन फल खाकर रहे, लेकिन रोटी-दाल के लिए जी तरसता रहता था। नाना पदार्थ बाजार में भरे थे, पर रोटियां कहां- एक दिन उनसे न रहा गया। रोटियां पकाईं और हौके में आकर कुछ ज्यादा खा गए। अजीर्ण हो गया। एक दिन दस्त आए। दूसरे दिन ज्वर हो आया। फलाहार से कुछ तो पहले गल चुके थे, दो दिन की बीमारी ने लस्त कर दिया।

सुखदा को देखकर बोले-अभी क्या आने की जल्दी थी बहू, दो-चार दिन और देख लेतीं- तब तक यह धान का सांप उड़ गया होता। वह लौंडा समझता है, मुझे अपने बाल-बच्चों से धान प्यारा है। किसके लिए इसका संचय किया था- अपने लिए- तो बाल-बच्चों को क्यों जन्म दिया- उसी लौंडे को, जो आज मेरा शत्रु बना हुआ है, छाती से लगाए क्यों ओझे-सयानों, वै?ों-हकीमों के पास दौड़ा फिरा- खुद कभी अच्छा नहीं खाया, अच्छा नहीं पहना, किसके लिए- कृपण

बना, बेईमानी की, दूसरों की खुशामद की, अपनी आत्मा की हत्या की, किसके लिए- जिसके लिए चोरी की, वही आज मुझे चोर कहता है।

सुखदा सिर झुकाए खड़ी रोती रही।

लालाजी ने फिर कहा-मैं जानता हूँ, जिसे ईश्वर ने हाथ दिए हैं, वह दूसरों का मुहताज नहीं रह सकता। इतना मूर्ख नहीं हूँ, लेकिन मां-बाप की कामना तो यही होती है कि उनकी संतान को कोई कष्ट न हो। जिस तरह उन्हें मरना पड़ा, उसी तरह उनकी संतान को मरना न पड़े। जिस तरह उन्हें धाकड़े खाने पड़े, कर्म-अकर्म सब करने पड़े वे कठिनाइयाँ उनकी संतान को न झेलनी पड़ें। दुनिया उन्हें लोभी, स्वार्थी कहती है, उनको परवाह नहीं होती, लेकिन जब अपनी ही संतान अपना अनादर करे, तब सोचो अभागे बाप के दिल पर क्या बीतती है- उससे मालूम होता है, सारा जीवन निष्फल हो गया। जो विशाल भवन एक-एक ईंट जोड़कर खड़ा किया था, जिसके लिए क्वार की धूप और माघ की वर्षा सब झेली, वह ढह गया, और उसके ईंट-पत्थर सामने बिखरे पड़े हैं। वह घर नहीं ढह गया वह जीवन ढह गया, संपूर्ण जीवन की कामना ढह गई।

सुखदा ने बालक को नैना की गोद से लेकर ससुर की चारपाई पर सुला दिया और पंखा झलने लगी। बालक ने बड़ी-बड़ी सजग आंखों से बूढ़े दादा की मूँछें देखीं, और उनके यहां रहने का कोई विशेष प्रयोजन न देखकर उन्हें उखाड़कर फेंक देने के लिए उत हो गया। दोनों हाथों से मूँछ पकड़कर खींची। लालाजी ने 'सी-सी' तो की पर बालक के हाथों को हटाया नहीं। हनुमान ने भी इतनी निर्दयता से लंका के उपवनोंका विध्वंस न किया होगा। फिर भी लालाजी ने बालक के हाथों से मूँछें नहीं छुड़ाईं। उनकी कामनाएं जो पड़ी एड़ियां रगड़ रही थीं, इस स्पर्श से जैसे संजीवनी पा गईं। उस स्पर्श में कोई ऐसा प्रसाद, कोई ऐसी विभूति थी। उनके रोम-रोम में समाया हुआ बालक जैसे मथित होकर नवनीत की भांति प्रत्यक्ष हो गया हो।

दो दिन सुखदा अपने नए घर न गई, पर अमरकान्त पिता को देखने एक बार भी न आया। सिल्लो भी सुखदा के साथ चली गई थी। शाम को आता, रोटियां पकाता, खाता और कांग्रेस-दफ्तर या नौजवान-सभा के कार्यालय में चला जाता। कभी किसी आम जलसे में बोलता, कभी चंदा उगाहता।

तीसरे दिन लालाजी उठ बैठे। सुखदा दिन भर तो उनके पास रही। संध्या समय उनसे विदा मांगी। लालाजी स्नेह-भरी आंखों से देखकर बोले-मैं जानता कि तुम मेरी तीमारदारी ही के लिए आई हो, तो दस-पांच दिन और पड़ा रहता, बहू मैंने तो जान-बूझकर कोई अपराध नहीं किया लेकिन कुछ अनुचित हुआ हो तो उसे क्षमा करो।

सुखदा का जी हुआ मान त्याग दे पर इतना कष्ट उठाने के बाद जब अपनी गृहस्थी कुछ-कुछ जम चली थी, यहां आना कुछ अच्छा न लगता था। फिर, वहां वह स्वामिनी थी। घर का संचालन उसके अधीन था। वहां की एक-एक वस्तु में अपनापन भरा हुआ था। एक-एक तृण में उसका स्वाभिमान झलक रहा था। एक-एक वस्तु में उसका अनुराग अंकित था। एक-एक वस्तु पर उसकी आत्मा की छाप थी मानो उसकी आत्मा ही प्रत्यक्ष हो गई हो। यहां की कोई वस्तु उसके अभिमान की वस्तु न थी उसकी स्वाभिमानी कल्पना सब कुछ होने पर भी तुष्टि का आनंद न पाती थी। पर लालाजी को समझाने के लिए किसी युक्ति की जरूरत थी। बोली-यह आप क्या कहते हैं दादा, हम लोग आपके बालक हैं। आप जो कुछ उपदेश या ताड़ना देंगे, वह हमारे ही भले के लिए देंगे। मेरा जी तो जाने को नहीं चाहता लेकिन अकेले मेरे चले आने से क्या होगा- मुझे खुद शर्म आती है कि दुनिया क्या कह रही होगी। मैं जितनी जल्दी हो सकेगी सबको घसीट लाऊंगी।

जब तक आदमी कुछ दिन ठोकें नहीं खा लेता, उसकी आंखें नहीं खुलतीं। मैं एक बार रोज आकर आपका भोजन बना जाएँ करूँगी। कभी बीबी चली आएंगी, कभी मैं चली आऊँगी।

उस दिन से सुखदा का यही नियम हो गया। वह सबेरे यहां चली आती और लालाजी को भोजन कराके लौट जाती। फिर खुद भोजन करके बालिका विद्यालय चली जाती। तीसरे पहर जब अमरकान्त खादी बेचने चला जाता, तो वह नैना को लेकर फिर आ जाती, और दो-तीन घंटे रहकर चली जाती। कभी-कभी खुद रेणुका के पास जाती तो नैना को यहां भेज देती। उसके स्वाभिमान में कोमलता थी अगर कुछ जलन थी तो वह कब की शीतल हो चुकी थी। वृद्ध पिता को कोई कष्ट हो, यह उससे न देखा जाता था।

इन दिनों उसे जो बात सबसे ज्यादा खटकती थी, वह अमरकान्त का सिर पर खादी लादकर चलना था। वह कई बार इस विषय पर उससे झगड़ा कर चुकी थी पर उसके कहने से वह और जिद पकड़ लेता था। इसलिए उसने कहना-सुनना छोड़ दिया था पर एक दिन घर जाते समय उसने अमरकान्त को खादी का गड्ढर लिए देख लिया। उस मुहल्ले की एक महिला भी उसके साथ थी। सुखदा मानो धरती में गड़ गई।

अमर ज्योंही घर आया, उसने यही विषय छेड़ दिया-मालूम तो हो गया, कि तुम बड़े सत्यवादी हो। दूसरों के लिए भी कुछ रहने दोगे, या सब तुम्हीं ले लोगे। अब तो संसार में परिश्रम का महर्त्तव ही हो गया। अब तो बकचा लादना छोड़ो। तुम्हें शर्म न आती हो, लेकिन तुम्हारी इज्जत के साथ मेरी इज्जत भी तो बंधी हुई है। तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि तुम यों मुझे अपमानित करते फिरो।

अमर तो कमर कसे तैयार था ही। बोला-यह तो मैं जानता हूं कि मेरा अधिकार कहीं कुछ नहीं है लेकिन क्या पूछ सकता हूं कि तुम्हारे अधिकारों की भी कहीं सीमा है, या वह असीम है -

'मैं ऐसा कोई काम नहीं करती, जिसमें तुम्हारा अपमान हो।'

'अगर मैं कहूं कि जिस तरह मेरे मजदूरी करने से तुम्हारा अपमान होता है, उसी तरह तुम्हारे नौकरी करने से मेरा अपमान होता है, शायद तुम्हें विश्वास न आएगा।'

'तुम्हारे मान-अपमान का कांटा संसार भर से निराला हो, तो मैं लाचार हूं।'

'मैं संसार का गुलाम नहीं हूं। अगर तुम्हें यह गुलामी पसंद है, तो शौक से करो। तुम मुझे मजबूर नहीं कर सकतीं।'

'नौकरी न करूं, तो तुम्हारे रुपये बीस आने रोज में घर-खर्च निभेगा?'

'मेरा खयाल है कि इस मुल्क में नब्बे फीसदी आदमियों को इससे भी कम में गुजर करना पड़ता है।'

'मैं उन नब्बे फीसदी वालों में नहीं, शेष दस फीसदी वालों में हूं। मैंने अंतिम बार कह दिया कि तुम्हारा बकचा ढोना मुझे असह्य है और अगर तुमने न माना, तो मैं अपने हाथों वह बकचा जमीन पर गिरा दूंगी। इससे ज्यादा मैं कुछ कहना या सुनना नहीं चाहती।'

इधर डेढ़ महीने से अमरकान्त सकीना के घर न गया था। याद उसकी रोज आती पर जाने का अवसर न मिलता। पंद्रह दिन गुजर जाने के बाद उसे शर्म आने लगी कि वह पूछेगी-इतने दिन क्यों नहीं आए, तो क्या जवाब दूंगा-इस शरमा-शरमी में वह एक महीना और न गया। यहां तक कि आज सकीना ने उसे एक कार्ड लिखकर खैरियत पूछी थी और फुरसत हो, तो दस मिनट के लिए बुलाया था। आज अम्मीजान बिरादरी में जाने वाली थीं। बातचीत करने का

अच्छा मौका था। इधर अमरकान्त भी इस जीवन से ऊब उठा था। सुखदा के साथ जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता, इधर इन डेढ़-दो महीनों में उसे काफी परिचय मिल गया था। वह जो कुछ है, वही रहेगा ज्यादा तबदील नहीं हो सकता। सुखदा भी जो कुछ है वही रहेगी। फिर सुखी जीवन की आशा कहां- दोनों की जीवन-धारा अलग, आदर्श अलग, मनोभाव अलग। केवल विवाह-प्रथा की मर्यादा निभाने के लिए वह अपना जीवन धूल में नहीं मिला सकता, अपनी आत्मा के विकास को नहीं रोक सकता। मानव-जीवन का उद्देश्य कुछ और भी है खाना, कमाना और मर जाना नहीं।

वह भोजन करके आज कांग्रेस-दफ्तर न गया। आज उसे अपनी जिंदगी की सबसे महत्वपूर्ण समस्या को हल करना था। इसे अब वह और नहीं टाल सकता। बदनामी की क्या चिंता- दुनिया अंधी है और दूसरों को अंधा बनाए रखना चाहती है। जो खुद अपने लिए नई राह निकालेगा, उस पर संकीर्ण विचार वाले हंसें, तो क्या आश्चर्य- उसने खददर की दो साड़ियां उसे भेंट देने के लिए ले लीं और लपका हुआ जा पहुंचा।

सकीना उसकी राह देख रही थी। कुंडी खनकते ही द्वार खोल दिया और हाथ पकड़कर बोली-तुम तो मुझे भूल ही गए। इसी का नाम मुहब्बत है-

अमर ने लज्जित होकर कहा-यह बात नहीं है, सकीना एक लमहे के लिए भी तुम्हारी याद दिल से नहीं उतरती, पर इधर बड़ी परेशानियों में फंसा रहा।

'मैंने सुना था। अम्मां कहती थीं। मुझे यकीन न आता था कि तुम अपने अब्बाजान से अलग हो गए। फिर यह भी सुना कि तुम सिर पर खददर लादकर बेचते हो। मैं तो तुम्हें कभी सिर पर बोझ न लादने देती। मैं वह गठरी अपने सिर पर रखती और तुम्हारे पीछे-पीछे चलती। मैं यहां आराम से पड़ी थी और तुम इस धूप में कपड़े लादे फिरते थे। मेरा दिल तड़प-तड़पकर रह जाता था।'

कितने प्यारे, मीठे शब्द थे कितने कोमल स्नेह में डूबे हुए सुखदा के मुख से भी कभी यह शब्द निकले- वह तो केवल शासन करना जानती है उसको अपने अंदर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ कि वह उसका चौगुना बोझ लेकर चल सकता है, लेकिन वह सकीना के कोमल हृदय को आघात नहीं पहुंचाएगा। आज से वह गड्ढर लादकर नहीं चलेगा। बोला- दादा की खुदगरजी पर दिल जल रहा था, सकीना वह समझते होंगे, मैं उनकी दौलत का भूखा हूं। मैं उन्हें और उनके दूसरे भाइयों को दिखा देना चाहता था कि मैं कड़ी-से-कड़ी मेहनत कर सकता हूं। दौलत की मुझे परवाह नहीं है। सुखदा उस दिन मेरे साथ आई थी, लेकिन एक दिन दादा ने झूठ-मूठ कहला दिया, मुझे बुखार हो गया है। बस वहां पहुंच गई। तब से दोनों वक्त उनका खाना पकाने जाती है।

सकीना ने सरलता से पूछा-तो क्या यह भी तुम्हें बुरा लगता है- बूढ़े आदमी अकेले घर में पड़े रहते हैं। अगर वह चली जाती हैं, तो क्या बुराई करती हैं- उनकी इस बात से तो मेरे दिल में उनकी इज्जत हो गई।

अमर ने खिसियाकर कहा-यह शराफत नहीं है सकीना, उनकी दौलत है, मैं तुमसे सच कहता हूं, जिसने कभी झूठों मुझसे नहीं पूछा, तुम्हारा जी कैसा है, वह उनकी बीमारी की खबर पाते ही बेकरार हो जाए, यह बात समझ में नहीं आती। उनकी दौलत उसे खींच ले जाती है, और कुछ नहीं। मैं अब इस नुमायश की जिंदगी से तंग आ गया हूं, सकीना मैं सच कहता हूं, पागल हो जाऊंगा। कभी-कभी जी में आता है, सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊं, ऐसी जगह भाग जाऊं, जहां लोगों में आदमियत हो। आज तुझे फैसला करना पड़ेगा सकीना, चलो कहीं छोटी-सी कुटी बना लें और खुदगरजी की दुनिया से अलग मेहनत-मजदूरी करके जिंदगी बसर करें। तुम्हारे साथ रहकर फिर मुझे किसी चीज की

आरजू नहीं रहेगी। मेरी जान मुहब्बत के लिए तड़प रही है, उस मुहब्बत के लिए नहीं, जिसकी जुदाई में भी विसाल है, बल्कि जिसकी विसाल में भी जुदाई है। मैं वह मुहब्बत चाहता हूँ, जिसमें ख्वाहिश है, लज्जत है। मैं बोटल की सुर्ख शराब पीना चाहता हूँ, शायरों की खयाली शराब नहीं।

उसने सकीना को छाती से लगा लेने के लिए अपनी तरफ खींचा। उसी वक्त द्वार खुला और पठानिन अंदर आई। सकीना एक कदम पीछे हट गई। अमर भी जरा पीछे खसक गया।

सहसा उसने बात बनाई-आज कहां चली गई थीं, अम्मां - मैं यह साड़ियां देने आया था। तुम्हें मालूम तो होगा ही, मैं अब खददर बेचता हूँ।

पठानिन ने साड़ियों का जोड़ा लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। उसका सूखा, पिचका हुआ मुंह तमतमा उठा सारी झुर्रियां, सारी सिकुड़नें जैसे भीतर की गर्मी से तन उठीं गली-बुझी हुई आंखें जैसे जल उठीं। आंखें निकालकर बोली-होश में आ, छोकरे यह साड़ियां ले जा, अपनी बीवी-बहन को पहना, यहां तेरी साड़ियों के भूखे नहीं हैं। तुझे शरीफजादा और साफ-दिल समझकर तुझसे अपनी गरीबी का दुखड़ा कहती थी। यह न जानती थी कि तू ऐसे शरीफ बाप का बेटा होकर शोहदापन करेगा। बस, अब मुंह न खोलना, चुपचाप चला जा, नहीं आंखें निकलवा लूंगी। तू है किस घमंड में-अभी एक इशारा कर दूँ, तो सारा मुहल्ला जमा हो जाए। हम गरीब हैं, मुसीबत के मारे हैं, रोटियों के मुहताज हैं। जानता है क्यों- इसलिए कि हमें आबरू प्यारी है, खबरदार जो कभी इधर का रुख किया। मुंह में कालिख लगाकर चला जा।

अमर पर फालिज गिर गया, पहाड़ टूट पड़ा, वज्रपात हो गया। इन वाक्यों से उसके मनोभावों का अनुमान हम नहीं कर सकते। जिनके पास कल्पना है, वह कुछ अनुमान कर सकते हैं। जैसे संज्ञा-शून्य हो गया, मानो पाषाण प्रतिमा हो। एक मिनट तक वह इसी दशा में खड़ा रहा। फिर दोनों साड़ियां उठा लीं और गोली खाए जानवर की भांति सिर लटकाए, लड़खड़ाता हुआ द्वार की ओर चला।

सहसा सकीना ने उसका हाथ पकड़कर रोते हुए कहा-बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। जिन्हें अपनी आबरू प्यारी है, वह अपनी आबरू लेकर चार्टें। मैं बेआबरू ही रहूंगी।

अमरकान्त ने हाथ छुड़ा लिया और आहिस्ता से बोला-जिंदा रहेंगे, तो फिर मिलेंगे, सकीना इस वक्त जाने दो। मैं अपने होश में नहीं हूँ।

यह कहते हुए उसने कुछ समझकर दोनों साड़ियां सकीना के हाथ में रख दीं और बाहर चला गया।

सकीना ने सिसकियां लेते हुए पूछा-तो आओगे कब -

अमर ने पीछे फिरकर कहा-जब यहां मुझे लोग शोहदा और कमीना न समझेंगे ।

अमर चला गया और सकीना हाथों में साड़ियां लिए द्वार पर खड़ी अंधकार में ताकती रही।

सहसा बुढ़िया ने पुकारा-अब आकर बैठेगी कि वहीं दरवाजे पर खड़ी रहेगी- मुंह में कालिख तो लगा दी। अब और क्या करने पर लगी हुई है-

सकीना ने क्रोध भरी आंखों से देखकर कहा-अम्मां, आकबत से डरो, क्यों किसी भले आदमी पर तोहमत लगाती हो। तुम्हें ऐसी बात मुंह से निकालते शर्म भी नहीं आती। उनकी नेकियों का यह बदला दिया है तुमने तुम दुनिया में चिराग लेकर दूढ़ आओ, ऐसा शरीफ तुम्हें न मिलेगा।

पठानिन ने डांट बताई-चुप रह, बेहया कहीं की शरमाती नहीं, ऊपर से जबान चलाती है। आज घर में कोई मर्द होता, तो सिर काट लेता। मैं जाकर लाला से कहती हूं। जब तक इस पाजी को शहर से न निकाल दूंगी, मेरा कलेजा न ठंडा होगा। मैं उसकी जिंदगी गारत कर दूंगी।

सकीना ने निशंक भाव से कहा-अगर उनकी जिंदगी गारत हुई, तो मेरी भी गारत होगी। इतना समझ लो।

बुढ़िया ने सकीना का हाथ पकड़कर इतने जोर से अपनी तरफ घसीटा कि वह गिरते-गिरते बची और उसी दम घर से बाहर निकलकर द्वार की जंजीर बंद कर दी।

सकीना बार-बार पुकारती रही, पर बुढ़िया ने पीछे फिरकर भी न देखा। वह बेजान बुढ़िया जिसे एक-एक पग रखना दूभर था, इस वक्त आवेश में दौड़ी लाला समरकान्त के पास चली जा रही थी।

अठारह

अमरकान्त गली के बाहर निकलकर सड़क पर आया। कहां जाए- पठानिन इसी वक्त दादा के पास जाएगी। जरूर जाएगी। कितनी भयंकर स्थिति होगी कैसा कुहराम मचेगा- कोई धर्म के नाम को रोएगा, कोई मर्यादा के नाम को रोएगा। दगा, फरेब, जाल, विश्वासघात हराम की कमाई सब मुआफ हो सकती है। नहीं, उसकी सराहना होती है। ऐसे महानुभाव समाज के मुखिया बने हुए हैं। वेश्यागामियों और व्यभिचारियों के आगे लोग माथा टेकते हैं, लेकिन शु' हृदय और निष्कपट भाव से प्रेम करना निं? है, अक्षम्य है। नहीं अमर घर नहीं जा सकता। घर का द्वार उसके लिए बंद है। और वह घर था ही कब- केवल भोजन और विश्राम का स्थान था। उससे किसे प्रेम है-

वह एक क्षण के लिए ठिठक गया। सकीना उसके साथ चलने को तैयार है, तो क्यों न उसे साथ ले ले। फिर लोग जी भरकर रोएं और पीटें और कोसें। आखिर यही तो वह चाहता था लेकिन पहले दूर से जो पहाड़ टीला-सा नजर आता था, अब सामने देखकर उस पर चढ़ने की हिम्मत न होती थी। देश भर में कैसा हाहाकर मचेगा। एक म्युनिसिपल कमिश्नर एक मुसलमान लड़की को लेकर भाग गया। हरेक जबान पर यही चर्चा होगी। दादा शायद जहर खा लें। विरोधियों को तालियां पीटने का अवसर मिल जाएगा। उसे टालस्टाय की एक कहानी याद आई, जिसमें एक पुरुष अपनी प्रेमिका को लेकर भाग जाता है पर उसका कितना भीषण अंत होता है। अमर खुद किसी के विषय में ऐसी खबर सुनता, तो उससे घृणा करता। मांस और रक्त से ढका हुआ कंकाल कितना सुंदर होता है। रक्त और मांस का आवरण हट जाने पर वही कंकाल कितना भयंकर हो जाता है। ऐसी अगवाहें सुंदर और सरस को मिटाकर बीभत्स को मूर्तिमान कर देती हैं। नहीं, अमर अब घर नहीं जा सकता।

अकस्मात् बच्चे की याद आ गई। उसके जीवन के अंधकार में वही एक प्रकाश था उसका मन उसी प्रकाश की ओर लपका। बच्चे की मोहिनी मूर्ति सामने आकर खड़ी हो गई।

किसी ने पुकारा-अमरकान्त, यहां कैसे खड़े हो-

अमर ने पीछे फिरकर देखा तो सलीम था। बोला-तुम किधर से-

'जरा चौक की तरफ गया था।'

'यहां कैसे खड़े हो- शायद माशूक से मिलने जा रहे हो?'

वहीं से आ रहा हूं यार, आज गजब हो गया। वह शैतान की खाला बुढ़िया आ गई। उसने ऐसी-ऐसी सलावतें सुनाई कि

बस कुछ न पूछो।'

दोनों साथ-साथ चलने लगे। अमर ने सारी कथा कह सुनाई।

सलीम ने पूछा-तो अब घर जाओगे ही नहीं यह हिमाकत है। बुढ़िया को बकने दो। हम सब तुम्हारी पाकदामनी की गवाही देंगे। मगर यार हो तुम अहमक। और क्या कहूं- बिच्छू का मंत्र न जाने, सांप के मुंह में उंगली डाले। वही हाल तुम्हारा है। कहता था, उधर ज्यादा न आओ-जाओ। आखिर हुई वही बात। खैरियत हुई कि बुढ़िया ने मुहल्ले वालों को नहीं बुलाया, नहीं तो खून हो जाता।

अमर ने दार्शनिक भाव से कहा-खैर, जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। अब तो यही जी चाहता है कि सारी दुनिया से अलग किसी गोशे में पड़ा रहूं और कुछ खेती-बारी करके गुजर करूं। देख ली दुनिया, जी तंग आ गया।

'तो आखिर कहां जाओगे?'

'कह नहीं सकता। जिधर तकदीर ले जाए।'

'मैं चलकर बुढ़िया को समझा दूं?'

'फिजूल है। शायद मेरी तकदीर में यही लिखा था। कभी खुशी न नसीब हुई। और न शायद होगी। जब रो-रोकर ही मरना है, तो कहीं भी रो सकता हूं।'

'चलो मेरे घर, वहां डॉक्टर साहब को भी बुला लें, फिर सलाह करें। यह क्या कि एक बुढ़िया ने फटकार बताई और आप घर से भाग खड़े हुए। यहां तो ऐसी कितनी ही फटकारें सुन चुका, पर कभी परवाह नहीं की।'

'मुझे तो सकीना का खयाल आता है कि बुढ़िया उसे कोस-कोसकर मार डालेगी।'

'आखिर तुमने उसमें ऐसी क्या बात देखी, जो लट्टू हो गए?'

अमर ने छाती पर हाथ रखकर कहा-तुम्हें क्या बताऊं, भाईजान- सकीना असमत और वफा की देवी है। गूदड़ में यह रत्न कहां से आ गया, यह तो खुदा ही जाने, पर मेरी गमनसीब जिंदगी में वही चंद लम्हे यादगार हैं, जो उसके साथ गुजरे। तुमसे इतनी ही अर्ज है कि जरा उसकी खबर लेते रहना। इस वक्त दिल की जो कैफियत है, वह बयान नहीं कर सकता। नहीं जानता जिंदा रहूंगा, या मरूंगा। नाव पर बैठा हूं। कहां जा रहा हूं, खबर नहीं। कब, कहां नाव किनारे लगेगी, मुझे कुछ खबर नहीं। बहुत मुमकिन है मझधार ही में डूब जाए। अगर जिंदगी के तजरबे से कोई बात समझ में आई, तो यह कि संसार में किसी न्यायी ईश्वर का राज्य नहीं है। जो चीज जिसे मिलनी चाहिए उसे नहीं मिलती। इसका उल्टा ही होता है। हम जंजीरों में जकड़े हुए हैं। खुद हाथ-पांव नहीं हिला सकते। हमें एक चीज दे दी जाती है और कहा जाता है, इसके साथ तुम्हें जिंदगी भर निर्वाह करना होगा हमारा धर्म है कि उस चीज पर कनाअत करें। चाहे हमें उससे नफरत ही क्यों न हो। अगर हम अपनी जिंदगी के लिए कोई दूसरी राह निकालते हैं तो हमारी गरदन पकड़ ली जाती है, हमें कुचल दिया जाता है। इसी को दुनिया इंसाफ कहती है। कम-से-कम मैं इस दुनिया में रहने के काबिल नहीं हूं।

सलीम बोला-तुम लोग बैठे-बैठाए अपनी जान जहमत में डालने की फिर्कें किया करते हो, गोया जिंदगी हजार-दो हजार साल की है। घर में रुपये भरे हुए हैं, बाप तुम्हारे ऊपर जान देता है, बीवी परी जैसी बैठी है, और आप एक जुलाहे की लड़की के पीछे घर-बार छोड़े भागे जा रहे हैं। मैं तो इसे पागलपन कहता हूं। ज्यादा-से-ज्यादा यही तो होगा कि तुम कुछ कर जाओगे, यहां पड़े सोते रहेंगे। पर अंजाम दोनों का एक है। तुम रामनाम सत्ता हो जाओगे, मैं इन्नल्लाह राजेऊन।

अमर ने विषाद भरे स्वर में कहा-जिस तरह तुम्हारी जिंदगी गुजरी है, उस तरह मेरी जिंदगी भी गुजरती, तो शायद मेरे भी यही खयाल होते। मैं वह दरख्त हूं, जिसे कभी पानी नहीं मिला। जिंदगी की वह उम्र, जब इंसान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है। उस वक्त पौधों को तरी मिल जाए तो जिंदगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। उस वक्त खुराक न पाकर उसकी जिंदगी खुश्क हो जाती है। मेरी माता का उसी जमाने में देहांत हुआ और तब से मेरी ईह को खुराक नहीं मिली। वही भूख मेरी जिंदगी हैं। मुझे जहां मुहब्बत का एक रेजा भी मिलेगा, मैं बेअख्तियार उसी तरफ जाऊंगा। कुदरत का अटल कानून मुझे उस तरफ ले जाता है। इसके लिए अगर मुझे कोई खतावार कहे, तो कहे। मैं तो खुदा ही को जिम्मेदार कहूंगा।

बातें करते-करते सलीम का मकान आ गया।

सलीम ने कहा-आओ, खाना तो खा लो। आखिर कितने दिनों तक जलावतन रहने का इरादा है-

दोनों आकर कमरे में बैठे। अमर ने जवाब दिया-यहां अपना कौन बैठा हुआ है, जिसे मेरा दर्द हो- बाप को मेरी परवाह नहीं, शायद और खुश हों कि अच्छा हुआ बला टली। सुखदा मेरी सूरत से बेजार है। दोस्तों में ले-दे के एक तुम हो। तुमसे कभी-कभी मुलाकात होती रहेगी। मां होती तो शायद उसकी मुहब्बत खींच लाती। तब जिंदगी की यह रत्नार ही क्यों होती दुनिया में सबसे बदनसीब वह है, जिसकी मां मर गई हो।

अमरकान्त मां की याद करके रो पड़ा। मां का वह स्मृति-चित्र उसके सामने आया, जब वह उसे रोते देखकर गोद में उठा लेती थीं, और माता के आंचल में सिर रखते ही वह निहाल हो जाता था।

सलीम ने अंदर जाकर चुपके से अपने नौकर को लाला समरकान्त के पास भेजा कि जाकर कहना, अमरकान्त भागे जा रहे हैं। जल्दी चलिए। साथ लेकर फौरन आना। एक मिनट की देर हुई, तो गोली मार दूंगा।

फिर बाहर आकर उसने अमरकान्त को बातों में लगाया-लेकिन तुमने यह भी सोचा है, सुखदादेवी का क्या हाल होगा- मान लो, वह भी अपनी दिलबस्तगी का कोई इंतजाम कर लें, बुरा न मानना।

अमर ने अनहोनी बात समझते हुए कहा-हिन्दू औरत इतनी बेहया नहीं होती।

सलीम ने हंसकर कहा-बस, आ गया हिन्दूपन। अरे भाईजान, इस मुआमले में हिन्दू और मुसलमान की कैद नहीं। अपनी-अपनी तबियत है। हिन्दुओं में भी देवियां हैं, मुसलमानों में भी देवियां हैं। हरजाइयां भी दोनों ही में हैं। फिर तुम्हारी बीवी तो नई औरत है, पढ़ी-लिखी, आजाद खयाल, सैर-सपाटे करने वाली, सिनेमा देखने वाली, अखबार और नावल पढ़ने वाली। ऐसी औरतों से खुदा की पनाह। यह यूरोप की बरकत है। आजकल की देवियां जो कुछ न कर गुजरें वह थोड़ा है। पहले लोंडे पेशकदमी किया करते थे। मरदों की तरफ से छेड़छाड़ होती थी, अब जमाना पलट गया है। अब स्त्रियों की तरफ से छेड़छाड़ शुरू होती है।

अमरकान्त बेशर्मी से बोला-इसकी चिंता उसे हो जिसे जीवन में कुछ सुख हो। जो जिंदगी से बेजार है, उसके लिए क्या-जिसकी खुशी हो रहे, जिसकी खुशी हो जाए। मैं न किसी का गुलाम हूं, न किसी को गुलाम बनाना चाहता हूं।

सलीम ने परास्त होकर कहा-तो फिर हद हो गई। फिर क्यों न औरतों का मिजाज आसमान पर चढ़ जाए। मेरा खून तो इस खयाल ही से उबल आता है।

'औरतों को भी तो बेवफा मरदों पर इतना ही क्रोध आता है।'

'औरतों-मरदों के मिजाज में, जिस्म की बनावट में, दिल के जज्बात में फर्क है। औरत एक ही की होकर रहने के लिए बनाई गई है। मरद आजाद रहने के लिए बनाया है।'

'यह मरदों की खुदगर्जी है।'

'जी नहीं, यह हैवानी जिंदगी का उसूल है।'

बहस में शाखें निकलती गईं। विवाह का प्रश्न आया, फिर बेकारी की समस्या पर विचार होने लगा। फिर भोजन आ गया। दोनों खाने लगे।

अभी दो-चार कौर ही खाए होंगे कि दरबान ने लाला समरकान्त के आने की खबर दी। अमरकान्त झट मेज पर से उठ खड़ा हुआ, कुल्ला किया, अपने प्लेट मेज के नीचे छिपाकर रख दिए और बोला-इन्हें कैसे मेरी खबर मिल गई- अभी तो इतनी देर भी नहीं हुई। जरूर बुढ़िया ने आग लगा दी।

सलीम मुस्करा रहा था।

अमर ने तयौरियां चढ़ाकर कहा-यह तुम्हारी शरारत मालूम होती है। इसीलिए तुम मुझे यहां लाए थे- आखिर क्या नतीजा होगा- मुर्ति की जिल्लत होगी मेरी। मुझे जलील कराने से तुम्हें कुछ मिल जाएगा- मैं इसे दोस्ती नहीं, दुश्मनी कहता हूं।

तांगा द्वार पर रुका और लाला समरकान्त ने कमरे में कदम रखा।

सलीम इस तरह लालाजी की ओर देख रहा था, जैसे पूछ रहा हो, मैं यहां रहूं या जाऊं- लालाजी ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा-तुम क्यों खड़े हो बेटा, बैठ जाओ। हमारी और हाफिजजी की पुरानी दोस्ती है। उसी तरह तुम और अमर भाई-भाई हो। तुमसे क्या परदा है- मैं सब सुन चुका हूं लल्लू बुढ़िया रोती हुई आई थी। मैंने बुरी तरह फटकारा। मैंने कह दिया, मुझे तेरी बात का विश्वास नहीं है। जिसकी स्त्री लक्ष्मी का रूप हो, वह क्यों चुड़ैलों के पीछे प्राण देता फिरेगा लेकिन अगर कोई बात ही है, तो उसमें घबराने की कोई बात नहीं, बेटा। भूल-चूक सभी से होती है। बुढ़िया को दो-चार सौ रुपये दे दिए जाएंगे। लड़की की किसी भर ले घर में शादी हो जाएगी। चलो झगड़ा पाक हुआ। तुम्हें घर से भागने और शहर में ढिंढोरा पीटने की क्या जरूरत है- मेरी परवाह मत करो लेकिन तुम्हें ईश्वर ने बाल-बच्चे दिए हैं। सोचो, तुम्हारे चले जाने से कितने प्राणी अनाथ हो जाएंगे- स्त्री तो स्त्री ही है, बहन है वह रो-रोकर मर जाएगी। रेणुकादेवी हैं, वह भी तुम्हीं लोगों के प्रेम से यहां पड़ी हुई हैं। जब तुम्हीं न होंगे, तो वह सुखदा को लेकर चली जाएंगी, मेरा घर चौपट हो जाएगा। मैं घर में अकेला भूत की तरह पड़ा रहूंगा। बेटा सलीम, मैं कुछ बेजा तो नहीं कह रहा हूं- जो कुछ हो गया, सो हो गया। आगे के लिए ऐहतियात रखो। तुम खुद समझदार हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊं- मन को र्कर्तव्य की डोरी से बंधाना पड़ता है, नहीं तो उसकी चंचलता आदमी को न जाने कहां लिए-लिए फिरे- तुम्हें भगवान् ने सब कुछ दिया है। कुछ घर का काम देखो, कुछ बाहर का काम देखो। चार दिन की जिंदगी है, इसे हंस-खेलकर काट देना चाहिए। मारे-मारे फिरने से क्या फायदा-

अमर इस तरह बैठा रहा, मानो कोई पागल बक रहा है। आज तुम यहां चिकनी-चुपड़ी बातें कहके मुझे फंसाना चाहते हो। मेरी जिंदगी तुम्हीं ने खराब की। तुम्हारे ही कारण मेरी यह दशा हुई। तुमने मुझे कभी अपने घर को घर न समझने दिया। तुम मुझे चक्की का बैल बनाना चाहते हो। वह अपने बाप का अदब उतना न करता था, जितना दबता था, फिर भी उसकी कई बार बीच में टोकने की इच्छा हुई। ज्योंही लालाजी चुप हुए, उसने दृढ़ता के साथ कहा-दादा,

आपके घर में मेरा इतना जीवन नष्ट हो गया, अब मैं उसे और नष्ट नहीं करना चाहता। आदमी का जीवन खाने और मर जाने के लिए नहीं होता, न धान-संचय उसका उद्देश्य है। जिस दशा में मैं हूँ, वह मेरे लिए असहनीय हो गई है। मैं एक नए जीवन का सूत्रपात करने जा रहा हूँ, जहां मजदूरी लज्जा की वस्तु नहीं, जहां स्त्री पति को केवल नीचे नहीं घसीटती, उसे पतन की ओर नहीं ले जाती बल्कि उसके जीवन में आनंद और प्रकाश का संचार करती है। मैं रूढ़ियों और मर्यादाओं का दास बनकर नहीं रहना चाहता। आपके घर में मुझे नित्य बाधाओं का सामना करना पड़ेगा और उसी संघर्ष में मेरा जीवन समाप्त हो जाएगा। आप ठंडे दिल से कह सकते हैं, आपके घर में सकीना के लिए स्थान है-

लालाजी ने भीत नेत्रों से देखकर पूछा-किस रूप में-

'मेरी पत्नी के रूप में।'

'नहीं, एक बार नहीं, सौ बार नहीं।'

'तो फिर मेरे लिए भी आपके घर में स्थान नहीं है।'

'और तो तुम्हें कुछ नहीं कहना है?'

'जी नहीं।'

लालाजी कुर्सी से उठकर द्वार की ओर बढ़े। फिर पलटकर बोले-बता सकते हो, कहां जा रहे हो-

'अभी तो कुछ ठीक नहीं है।'

'जाओ, ईश्वर तुम्हें सुखी रखे। अगर कभी किसी चीज की जरूरत हो, तो मुझे लिखने में संकोच न करना।'

'मुझे आशा है, मैं आपको कोई कष्ट न दूंगा।'

लालाजी ने सजल नेत्र होकर कहा-चलते-चलते घाव पर नमक न छिड़को, लल्लू बाप का हृदय नहीं मानता। कम-से-कम इतना तो करना कि कभी-कभी पत्र लिखते रहना। तुम मेरा मुंह न देखना चाहो लेकिन मुझे कभी-कभी आने-जाने से न रोकना। जहां रहो, सुखी रहो, यही मेरा आशीर्वाद है।